

रजिस्ट्रेशन नं०

ए-१७९५

प्रकाशक

बुनियादी साहित्य प्रकाशन

लखनऊ

मुद्रक

साथी प्रेस

लखनऊ

सम्पादक

गोरखनाथ चौवे एम० ए०

सम्पादक मण्डल

डा० सीताराम जायसवाल

बाबू द्वारिका सिंह एम० ए०

रुद्रभान भाई

रामजनम् सिंह 'शिरीष'

रविशंकर

प्रबन्ध : सम्पादक

उमाशंकर दीक्षित

चित्रकार

आर० के० शर्मा 'अशेष'



चन्दा - दर

वार्षिक : ५ रुपये

मासिक : ५० न० पैसे

मन की यह स्वाभाविक शक्ति है कि वह अपने स्वाभाविक उद्यम से ज्ञान को ले सकता है। अगर हम बाहर से किताबों के बोझ से इस शक्ति को दाब नहीं देते, तो वच्चे जो कुछ भी सीखेंगे, वह प्रयोग करके ही सीखेंगे।

आदर्श शिक्षक

पण्डित गंगाधर शास्त्री का पुत्र, जो उनके विद्यार्थियों का अन्यतम प्रिय था, तनिक-सी बीमारी में चल बसा। पण्डित जी उस दिन भी कक्षा में गये। कक्षा से छूट कर जब विद्यार्थी हुंठिराज को लेने के लिए घर गये तो उन्हें यह मर्माहत समाचार मिला कि उनका प्रिय गुरु पुत्र अब उनके बीच नहीं रहा। उन सब खड़े विद्यार्थियों के बीच से एक विद्यार्थी अपने को यह पूछने से न रोक सका—
“गुरु जी, इस मर्मांतक शोक में भी आपने आज पाठ बन्द नहीं किया !”

“कैसे करता बेटा,” पण्डित जी ठहर कर, पर स्थिर स्वर में समझाने लगे, ‘तुम बच्चे न जाने कितनी दूर-दूर से आये हो। भला तुम्हारा एक दिन कैसे नष्ट कर दूँ ? पुत्र शोक तो मेरा निजी मामला है; पर ज्ञान की इस आराधना का सम्बन्ध तो सब से है। इस अविचार कर्तव्य निष्ठा ने हम सबके हृदयों को मथ कर आँखों को आँसुओं से सिक्त कर दिया।’

आचार्य क्षितिमोहन सेन

माननीय राज्यपाल उत्तर प्रदेश का सन्देश



‘बुनियादी शिक्षक’ की प्रतियों को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई ।
हमारा विश्वास है कि इस प्रकार के साहित्य से बुनियादी शिक्षा
और बुनियादी स्कूलों को विशेष लाभ होगा । हमारा विश्वास है
कि बुनियादी शिक्षा के प्रसार में यह पत्रिका उपयोगी सिद्ध होगी ।

१४ जनवरी, ६३

राज्यपाल उत्तर प्रदेश
(विश्वनाथ दास)

श्रम मंत्री, उत्तर प्रदेश की शुभ कामना



देश की स्थिति के अनु-
कूल शिक्षा पद्धति में परिवर्तन
लाने के दृष्टिकोण से पूज्य
महात्मा गांधी ने 'बुनियादी
शिक्षा' की नींव डाली। सन्
१९३७ से विभिन्न राज्यों में
इसके प्रयोग हो रहे हैं। ज्ञान
के साथ श्रम को स्थान देना
बुनियादी शिक्षा के मूल में है।

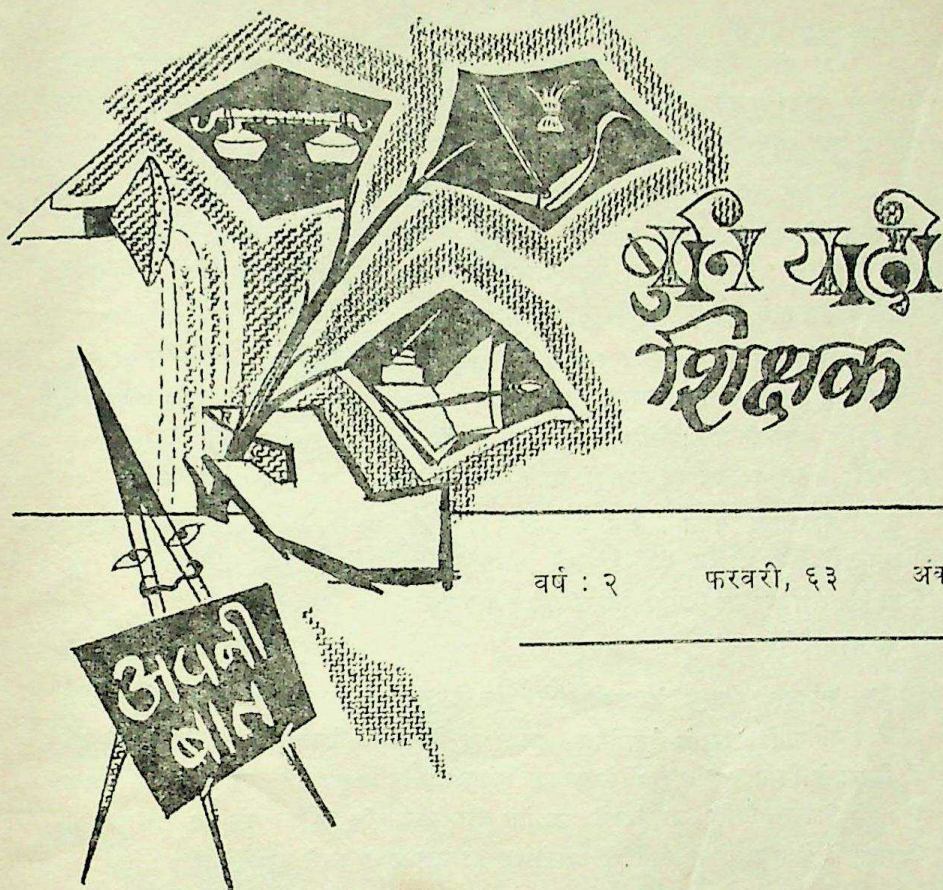
बुनियादी शिक्षा द्वारा
हम देश के बच्चों में स्वाभा-
विक रुचि पैदा कर सकते हैं
और वे भविष्य में चलकर
समाज के आवश्यक अंग बन
सकते हैं। अध्यापकों के ऊपर
इस योजना को सही तरीके
से चलाने के लिए बड़ी
जिम्मेदारी है और यदि वे

अपनी जिम्मेदारी को ठीक प्रकार निभा सकें तो जो बच्चे इस नयी पद्धति से
होकर निकलेगे वे बहुत ही लाभदायक सिद्ध होंगे।

मैं आशा करती हूँ कि "बुनियादी शिक्षक" के प्रकाशन से, बुनियादी शिक्षा
का स्तर ऊँचा करने तथा वातावरण बनाने में अवश्य सहायता मिलेगी। इसके
लिए मेरी शुभ कामनाएँ हैं।

२८ जनवरी, ६३

सुचेता कृपालानी



वर्ष : २

फरवरी, ६३

अंक : २

आज कालेजों और विश्वविद्यालयों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है; फिर भी मानवता का स्तर ऊँचा होना तो दूर रहा, निम्न होता जा रहा है। आज की शिक्षा ने समाज सुधारक, नेता, आलोचक, वैज्ञानिक, शिक्षक और अफसर तो पैदा किया है; लेकिन 'मनुष्य' नहीं। उर्दू के किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

मीर साहब गर फ़रिश्ता हों तो हों
आदमी होना मगर दुश्वार है।

इसमें सन्देह नहीं कि देवता होना तो सरल है; लेकिन मनुष्य होना बहुत ही भारी प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों नहीं होता। ऊँची शिक्षा प्राप्त डिग्री-नामक 'समान ही भारत महामानव' क्यों नहीं होते? यदि सम्भव होता तो सभी ऐसा 'साक्षात्क क्रांति के प्रथम' नहीं हो रहा है।

जो लोग शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों को समझ कर उसे अपने जीवन में उतारते हैं वे ही मानवता को अपना पाते हैं। लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द जी, कबीन्द्र रवीन्द्र और आचार्य विनोबा इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

पुस्तकें रट कर प्राप्त की हुई शिक्षा, वास्तविक शिक्षा नहीं है। वास्तव में सही शिक्षा वह है, जो पूर्ण मनुष्य का निर्माण करने में सफल हो। ऐसा नहीं हो पाता। आखिर क्यों ? इसीलिए कि हम शिक्षा के कल्पतरु की शाखाओं-प्रशाखाओं, फूल-पत्तों को सींचने में तो जी-जान से जुटे हुए हैं, जड़मूल को बिल्कुल भूल बैठे हैं।

ऐसा कब तक चलेगा ? आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के ढाँचे में परिवर्तन किया जाय। लोक कल्याण, समाज निर्माण, विश्वबन्धुत्व, सदाचरण, नैतिकता, और धार्मिकता, की ज्योति जला दी जाय; लेकिन यह काम एक-दो दिन का नहीं; आलोचना-प्रत्यालोचना का नहीं; अकेले सरकार का ही नहीं, वरन समाज का और समाज के रहबरों का भी है।

आज हम संकट कालीन परिस्थिति से गुजर रहे हैं। ऐसी दशा में हम सबकी जिम्मेवारी और भी बढ़ जाती है। हमें सोचना है और सोचकर अपना सही रास्ता चुन लेना है। क्षण भर का विराम हमारा अहित कर सकता है।

एक बात और

‘बुनियादी शिक्षक’ ने अपने चौथे अंक में एक नया मोड़ लिया है। पहले के तीन अंकों में बुनियादी शिक्षा के सैद्धान्तिक पहलुओं पर विशेष बल दिया गया था; लेकिन इस अंक में शिक्षा के क्रियात्मक पहलुओं से सम्बद्ध विशेष सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। हमें विश्वास है कि आप सबके सहयोग और आशीर्वाद के बल पर हम इस पत्र को शिक्षकों के लिए उपयोगी बनाने में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करते जायेंगे।

—०—

अपने अनुभवों से फायदा उठाने वाला इन्सान तो बुद्धिमान है ही; लेकिन वह और भी ज्यादा बुद्धिमान है, जो दूसरे के अनुभवों से भी सबक लेता है।

२८ जनवरी,

—जे० विलिंग्स

डा० के० एल० श्री माली

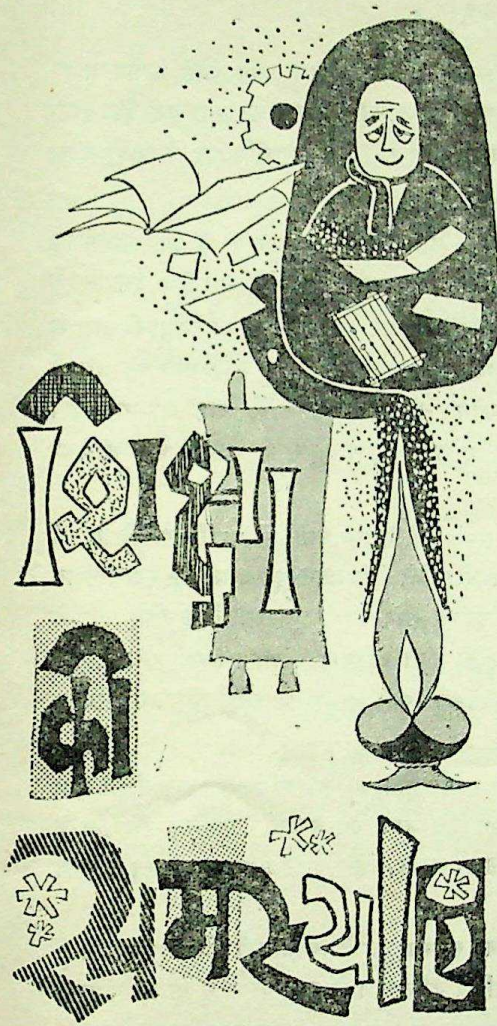
हमें स्थिति का अध्ययन करते हुए यह देखना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों में क्या प्रगति हुई है और कौमसी ऐसी समस्याएँ हैं, जिन्हें अभी सुलझाना है। जो काम अभी पूरे नहीं हुए हैं, उनमें शिक्षा भी एक है। इसके मार्ग में बहुतसी कठिनाइयाँ तथा जटिल समस्याएँ हैं।

भारत में शिक्षा के क्षेत्र में सब से महत्वपूर्ण कार्य १४ वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षण की व्यवस्था करना है। संविधान की दृष्टि से तो यह कार्य आवश्यक है ही, लोकतंत्रात्मक सामाजिक गठन होने के कारण देश निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की प्रणाली अपनाने के लिए नैतिक दृष्टि से भी बाध्य है।

लोकतंत्र का ध्येय व्यक्ति का विकास करना है। जब तक लोकतंत्रात्मक समाज के लाखों बच्चे शिक्षा की सुविधा से वंचित रहेंगे और अधिकांश लोग अपढ़ रहेंगे, तबतक वह समाज प्रभावपूर्ण नहीं हो सकता। अगर लोग अपनी परि-

स्थितियों तथा समस्याओं को भी समझने में असमर्थ होंगे तो विचार, अभिव्यक्ति और उपासना की स्वतंत्रता और मत-दान तथा देश की नीतियाँ निर्धारित करने का अधिकार बिलकुल व्यर्थसा होगा।

प्रजातंत्रात्मक समाज के लोग अपने आधारभूत अधिकारों का ठीक ठीक उपयोग तभी कर सकते हैं, जब वे पढ़े लिखे हों और मिलकर विचार तथा निर्णय कर सकें। इस दृष्टि से शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक तथा अनिवार्य है। पश्चिमी देशों के समान ही भारत को भी निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की प्रणाली अपनाकर शिक्षात्मक क्रांति के प्रथम चरण में प्रवेश करना होगा।



आयोजनाओं में शिक्षा के लिए जो व्यवस्था की गयी है, वह कोई विशेष आकर्षक नहीं है। इस मामले में हम जिस रफ्तार से चल रहे हैं, उससे तो यही शक पैदा होता है कि तीसरी या चौथी पंच वर्षीय योजना के अन्त तक भी हम संविधान के निर्देशन का पालन नहीं कर पायेंगे।

संविधान के निर्देशन का पालन करने का दायित्व सरकार पर है और प्रारम्भिक शिक्षा की प्रगति की यह धीमी रफ्तार, उसके लिए बड़ी चिन्ता की बात है। इस मामले में स्थानीय सामुदायिक प्रयत्न करना चाहिए और हमारे देशवासियों को शिक्षा-विकास के कार्यक्रमों से सम्बद्ध रहना चाहिए किन्तु फिर भी प्रारम्भिक शिक्षा के विकास की अन्तिम जिम्मेदारी सरकार की ही है। जिसमें केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें, दोनों आ जाती हैं। संविधान के निर्देश का पालन करने के लिए उन्हें अपने वित्तीय साधनों को जोड़कर सम्मिलित रूप से कार्रवाई करनी चाहिए।

स्थानीय निकाय या राज्य सरकारें अपने सीमित साधनों से प्रारम्भिक शिक्षा का वांछित विस्तार नहीं कर सकतीं। कुछ सरकारें पहिले ही अपने पूरे बजट की २० प्रतिशत से भी अधिक रकम शिक्षा पर खर्च कर रही है और नये स्कूल खोलने के लिए करों के जरिये और धन प्राप्त करने में उन्हें अवश्य ही बहुत कठिनाई होगी। इसके अलावा, कुछ राज्य आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और उनके पास आमदनी बढ़ाने के लिए पर्याप्त प्राकृतिक साधन भी नहीं है।

विभिन्न राज्यों के आर्थिक साधनों में अन्तर होने के कारण उनके स्तरों में भी वैसा ही अन्तर रखना किसी भी हालत में उचित नहीं माना जा सकता, इसलिए संविधान के निर्देश का पालन करने तथा देश भर में शिक्षा का समान अवसर प्रदान करने का दायित्व केन्द्रीय सरकार को अपने ऊपर लेना होगा।

सरकार के सम्मुख एक और जटिल समस्या यह है कि हमारी शिक्षा संस्थाओं में भाषाओं का क्या स्थान होना चाहिए? उचित दृष्टिकोण से कार्य करने से ही इस समस्या का समाधान हो सकता है। अब यह सामान्य रूप से स्वीकार किया जा चुका है कि मातृ-भाषा या प्रादेशिक भाषा ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। सभी राज्यों ने अपने यहाँ प्रारम्भिक या माध्यमिक शिक्षा के स्कूलों में मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा को शिक्षा का माध्यम बना दिया है। इस मामले में सभी एक मत हैं। हिन्दी और अंग्रेजी के सम्बन्ध में लोगों के मत एक से नहीं हैं। हिन्दी को राज्य भाषा स्वीकार करने का कारण यह नहीं है कि वह अन्य भारतीय भाषाओं से अधिक प्राचीन या समृद्ध है; बल्कि इसलिए कि अधिकांश देशवासी इसे बोलते और समझते हैं। हमें एक ऐसी भाषा का चुनाव करना है, जो न केवल सरकारी कामकाज में प्रयोग में आये; बल्कि जो विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच, लिखा पढ़ी और बोल-चाल का माध्यम बने।

(१२७)

सर्व साधारण के लिए शिक्षा का विस्तार होने पर विभिन्न भाषा-भाषी लोगों में परस्पर बोल-चाल और लिखा-पढ़ी बढ़ेगी। लोकतन्त्रात्मक संस्कृति के विकास के लिए लोगों में सामाजिक सम्पर्क होना अत्यन्त आवश्यक है। विभिन्न भाषा-भाषी लोग एक दूसरे से अलग-अलग नहीं रह सकते। आपसी व्यवहार की एक ऐसी भाषा अवश्य होनी चाहिए जिसे सब समझ सकें।

अंग्रेजी भाषा इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकती। बहुत कम लोग अंग्रेजी जानते हैं और उसमें काम कर सकते हैं। लोकतन्त्रात्मक समाज में सरकार के कामों तथा सांस्कृतिक विकास में लोगों का अधिक दखल रहता है; इसलिए यह जरूरी है कि यह कार्य ऐसी भाषा में हो, जिसे सब लोग समझें। इस दृष्टि से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारत में सभी बच्चों को हिन्दी पढ़ाई जानी चाहिए, इससे राष्ट्रीय एकता में बहुत वृद्धि होगी।

अंग्रेजी को माध्यमिक स्कूलों में कायम रखने के दो जोरदार कारण हैं :—

(१) अंग्रेजी अब केवल एक देश की भाषा नहीं है। अब यह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनती जा रही है। आनी समृद्धि सांस्कृतिक विरासत और परम्पराओं के कारण भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में महत्वपूर्ण कार्य करने हैं। विश्व-समाज तथा मानवीय सम्बन्धता के विकास में हम अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही योग दे सकते हैं।

(२) वैज्ञानिक तथा औद्योगिक साहित्य की दृष्टि से भी अंग्रेजी बहुत समृद्ध भाषा है। भारत में अपनी राष्ट्रीय प्रगति करने के लिए तथा देशवासियों के रहन सहन का स्तर ऊँचा उठाने के लिए विज्ञान तथा औद्योगिकी का सहारा लेने का निश्चय किया गया है। हिन्दी या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में इन विषयों पर, जो साहित्य है, वह बिलकुल नगण्य सा है। इसके लिए अंग्रेजी-भाषा का ज्ञान आवश्यक है।

हाई स्कूल छोड़ने के समय तक विद्यार्थी को तीन भाषाओं—प्रादेशिक भाषा, हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञान हो जाना चाहिए। जिन विद्यार्थियों की मातृभाषा हिन्दी है, उन्हें कोई दूसरी भारतीय भाषा सीखनी चाहिए। कई बार यह कहा जाता है कि अन्य विषयों के साथ साथ तीन भाषाओं के अध्ययन से बच्चे पर पढ़ाई का बोझ बढ़ जायेगा। यह डर निराधार है; क्योंकि हमारे सामने ऐसे कई देशों के उदाहरण मौजूद हैं, जहाँ माध्यमिक शिक्षा में बच्चों को तीन भाषाएँ सीखनी पड़ती हैं। जो भी हो, हमारे जैसे समाज के लिए तीन भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है।

केन्द्र और राज्यों के कार्यों में और अधिक सामंजस्य होना चाहिए, ताकि हम एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली बना सकें। केन्द्रीय सरकार ने इसके लिए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार

मण्डल, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा परिषद् आदि संस्थाएँ खोली हैं। अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा परिषद् की स्थापना हो चुकी है।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण बनाने में तथा राष्ट्रीय एकता कायम करने में शिक्षा का विशेष योग्य रहता है। यदि केन्द्रीय सरकार शिक्षा योजनाओं को वित्तीय सहायता देने की अधिक-धिक जिम्मेदारी अपने ऊपर लेती जाती है तो इसका मतलब राज्यों के अधिकारों में केन्द्र का हस्तक्षेप नहीं मानना चाहिए; बल्कि इस तथ्य को समझना चाहिए कि भारत के विभिन्न भाग एक दूसरे पर निर्भर हैं। अगर ग्रामीण और शहरी इलाकों में तथा पिछड़े और औद्योगिक दृष्टि से उन्नत राज्यों में शिक्षा के मामले में असमानताएँ दूर करने आदि की समस्याओं के राष्ट्रीय रूप के कारण उनके लिए केन्द्रीय सहायता या निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है, तो राज्यों को उसका स्वागत ही करना चाहिए।

हमें केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण के मामले में ज्यादा सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए और इन दोनों के बीच उचित सन्तुलन कायम करना चाहिए। यह एक विशाल कार्य है, जिसे सहनशीलता की भावना से और एक दूसरे को समझकर पूरा करना होगा।

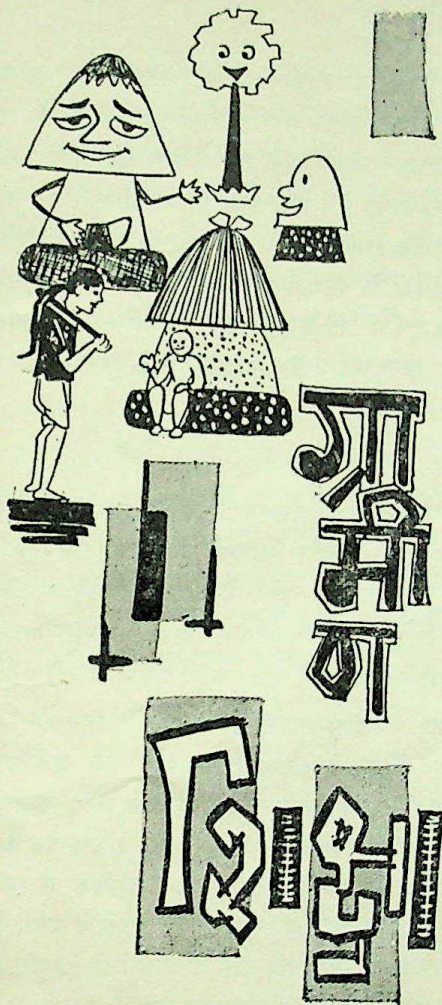
गाँधी जी का शिक्षा दर्शन

शिक्षा की परिभाषा—सा विद्या या विमुक्तये

(जिस विद्या से सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है वही वास्तविक है।)

लक्ष्य—वर्गहीन, वर्णहीन तथा सहयोगी समाज का अहिंसात्मक विधि से निर्माण।

साधन—स्वावलम्बन में सहायक स्वरूप उद्योगों से केन्द्रित विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ सर्व ग्राम प्रसार कार्य।



डा० सीताराम जायसवाल

भारत गाँवों का देश है। यहाँ की लगभग ८० प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है। यहाँ के आर्थिक जीवन का आधार कृषि है। इस प्रकार भारत की शिक्षा के स्वरूप पर विचार करते समय ग्रामीण शिक्षा की समस्याओं की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। सामान्य रूप से शिक्षा का एक सिद्धान्त यह है कि बालक के पर्यावरण, समाज और संस्कृति के अनुरूप उसकी शिक्षा होनी चाहिए। इसीलिए एक ग्रामीण बालक की शिक्षा का स्वरूप भी होना चाहिए।

अपने आप में यह सिद्धान्त सही है; लेकिन इसी के साथ यह भी सवाल उठता है कि क्या हम अपने गाँवों को उसी दशा में रखना चाहते हैं जैसी कि वे सदियों से रहते आये हैं? दूसरों शब्दों में, क्या हम अपने गाँवों का विकास नहीं चाहते? यदि हम अपने गाँवों का विकास चाहते हैं तो हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि उस विकास का स्वरूप क्या होगा।

सांस्कृतिक एकता

इसके पूर्व कि हम भारत के गाँवों के विकास के सन्दर्भ में ग्रामीण शिक्षा पर विचार करें, हमें भारत की सांस्कृतिक

एकता की ओर भी ध्यान देना चाहिए। भारतीय संस्कृति एक है। इस एकता का आधार क्या है? बहुधा यह कहा जाता है कि भारत की विविधता में एकता निहित है। ऊपर से भारत अनेक प्रादेशिक संस्कृतियों का संग्रह मात्र प्रतीत होता है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में भाषाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। न केवल वेषभूषा, आचार, व्यवहार तथा खानपान की दृष्टि से भिन्नता है, बरन कुछ ऐसी भी बातें पायी जाती हैं; जो विविधता पर अधिक बल देती हैं और एकता पर कम; लेकिन इस विविधता और अन्तर के होते हुए भी भारत में एक ऐसी एकता पायी जाती है, जिसका मूलाधार दार्शनिक और आध्यात्मिक है।

दूसरे शब्दों में, भारत की भावात्मक एकता का आधार हमारे प्राचीन ऋषियों, सन्त-महात्माओं की वाणी है। भारत का साहित्य भी सांस्कृतिक और भावात्मक एकता का प्रधान श्रोत है। अतः यह आवश्यक है कि हम भारतीय संस्कृति के उन आध्यात्मिक मूल्यों को शिक्षा में स्थान दें, जो उसकी एकता के परिचायक हैं। ऐसी दशा में भारतीय शिक्षा का उद्देश्य जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित होना चाहिए। इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा का एक रूप वह होगा, जो सभी भारतवासियों के लिए आवश्यक समझा जायगा। दूसरे शब्दों में, भारत की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए हमें भारतीय जीवन के उन मूल्यों को शिक्षा में स्थान देना होगा, जो प्रत्येक भारतवासी के हृदय में भारत के प्रति निष्ठा उत्पन्न करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा

भारत की उसी शिक्षा-प्रणाली को राष्ट्रीय माना जा सकता है, जो सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन से सम्बन्धित हो। दूसरे शब्दों में, भारत की राष्ट्रीय शिक्षा के मूल में राष्ट्रीय एकता की भावना होनी चाहिए। जो शिक्षा भारत के विघटन को रोकने में असमर्थ हो उसे राष्ट्रीय कहना अनुचित है। यह खेद का विषय है कि भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली यद्यपि राष्ट्रीय कही जाती है, लेकिन इसमें उन तत्वों का अभाव है जो राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं।

अतः यह स्पष्ट हो कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास के लिए राष्ट्रीय एकता सम्बन्धी जीवन मूल्यों पर बल देना होगा। लेकिन इसी के साथ हमें प्रादेशिक संस्कृतियों की उपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए; क्योंकि शिक्षा और संस्कृति में अटूट सम्बन्ध है। वही शिक्षा उपयोगी होती है, जो विद्यार्थी के जीवन और संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाती है। इस प्रकार वास्तविक समस्या यह है कि राष्ट्रीय शिक्षा और प्रादेशिक संस्कृति पर आधारित शिक्षा में सामंजस्य किस प्रकार स्थापित किया जाय। हमारे देश में भाषा के आधार पर अब कुछ प्रदेशों की सीमा निश्चित की गयी तब उसी के साथ ऐसी प्रवृत्तियाँ भी प्रकट हुई, जो राष्ट्रीय एकता के लिए संकट बन गयी। यह संकट ऐसा है, जिससे हमें बचना चाहिए।

इस संदर्भ में जब हम ग्रामीण शिक्षा के स्वरूप पर विचार करते हैं तब प्रत्यक्ष रूप से दो प्रश्न उपस्थित होते हैं। एक प्रश्न का सम्बन्ध तो ग्रामीण शिक्षा के राष्ट्रीय पक्ष से है। इस प्रश्न के उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण शिक्षा का राष्ट्रीय पक्ष अवश्य होना चाहिए जिससे प्रत्येक ग्रामवासी अपने को भारत का नागरिक समझे। उसके मन में यह भावना उत्पन्न न हो कि वह भारत का द्वितीय श्रेणी का नागरिक है।

ग्रामीण शिक्षा से सम्बन्धित दूसरा प्रश्न ग्रामीण जनता के जीवन स्तर का है। ग्रामीण जनता का जीवन स्तर किस प्रकार विकसित किया जाय, जिससे कि उसे वे समस्त

(१३१)

सुविधाएँ उपलब्ध हों, जोकि सर्व कल्याणकारी समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपलब्ध होनी चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि हम अपने देश में एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाना चाहते हैं, जिसके अर्न्तगत प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह नगर का निवासी हो अथवा ग्रामवासी वे समस्त अवसर मिलते रहें, जो एक लोकतन्त्र प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, सबको अनिवार्य रूप से उनकी योग्यता के अनुरूप विकास का अवसर मिलना ही चाहिए। ऐसा न हो कि कोई व्यक्ति, जाति, धर्म अथवा प्रदेश के कारण किसी ऐसे अवसर से वंचित कर दिया जाय, जो उसकी प्रगति के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार हमारा उद्देश्य ग्रामीण जनता के जीवन को सुखमय बनाना है। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना होगा कि ग्रामीण संस्कृति के उन तत्वों को अवश्य अधुण्णा बनाये रखा जाय, जोकि शक्तदायक है। यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक संस्कृति में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो जनजीवन को सदा प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हमारी लोक संस्कृति के जो जीवन मूल्य बलदायक तथा प्रगतिशील हैं उन्हें अपनाते हुए ग्रामीण जनता के जीवन में समृद्धि का विकास किया जाय। इस प्रकार हम ग्रामीण संस्कृति की विशेषताओं को नष्ट होने से बचा लेंगे और साथ ही ऐसा विकास करने में सफल होंगे, जो सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में होगा।

— ० —

१३५ पृष्ठ का शेषांश

९—अस्थायी कठोरता कैसे दूर करते हैं ?

१०—स्थायी कठोरता कैसे दूर की जाती है ?

११—मृदु तथा कठोर जल को कैसे पहचानते हैं ?

इस प्रकार के अध्यापन से विज्ञान के प्रति बालकों में रोचकता उत्पन्न होती है। उनकी विचारशक्ति में वृद्धि होती है। निरीक्षण में आनन्द आता है और वे निर्णय या परिणाम निकालने में बुद्धि का उपयोग करते हैं। कंठाग्र करने या रटने की आदत नहीं पड़ती तथा स्वयं प्रयोग करने की प्रवृत्ति जागृत होती है। प्रयोग के समय की अन्य सामान्य बातों का भी बोध होता है तथा सावधानियों का भी ज्ञान हो जाता है।

दिनेश चौहान



प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि साहित्य, इतिहास, भूगोल आदि की अपेक्षा विज्ञान एक ऐसा विषय है जिसका जन्म केवल प्रखर बुद्धि वाले बालकों के लिए ही हुआ है। सामान्य बुद्धि वाले बालक इसे समझ ही नहीं सकते। यह सामान्य धारणा बन गयी है कि विज्ञान एक कठिन एवं शुष्क विषय है। किन्तु वास्तविकता यह है कि इससे अधिक रोचक और सुबोध विषय दूसरा कोई नहीं है।

विज्ञान का अध्यापन अन्य विषयों से भिन्न अवश्य होता है। साथ ही अध्यापक को इस विषय के अध्यापन में कष्ट भी बहुत होता है। पाठ को तैयार करने में उसे अतिरिक्त समय भी लगाना पड़ता है जो प्रायः अध्यापक के लिए कष्ट प्रद होता है। अपने इस कष्ट से मुक्ति के लिए अनेक अध्यापक भाषा की भाँति ही विज्ञान की पुस्तक भी पढ़ते जाते हैं और उसका अर्थ समझाते जाते हैं अथवा विद्यार्थियों द्वारा पुस्तक पढ़वाते हैं और बीच-बीच में रोक कर अर्थ स्पष्ट करते हैं।

विज्ञान की पुस्तक को पढ़ने या सुनने मात्र से इस विषय को समझना समझाना कठिन अवश्य है। विद्यार्थी पुस्तक को समझे बिना ही रटना सीख जाते हैं। जो विद्यार्थी अधिक रट सकता है उसे ही परीक्षा में अंक भी अच्छे मिलते हैं, यद्यपि उसकी बुद्धि का कहीं प्रयोग ही नहीं होता है। यही विद्यार्थी जब ऊँची कक्षाओं में पहुँचता है तो इतना बड़ा कोर्स पाता है कि उसे कंठाग्र करना उसके लिए कठिन हो जाता है। फलतः विज्ञान उसे कठिन प्रतीत होने लगता है और वह अन्य विषयों की ओर दौड़ने लगता है। ऐसे विद्यार्थी जीवन में सदैव असफल होते हैं। इनके लिए विज्ञान सुबोध और रोचक होने के स्थान पर कठिन और शुष्क हो जाता है।

(१३३)

प्रश्न उठता है—फिर विज्ञान पढ़ाया कैसे जाय ? इस प्रश्न का हल अनेक शिक्षा शास्त्रियों ने प्रस्तुत किया है। मेरा अनुभव थोड़ा भिन्न अवश्य है, जो मेरे अपने अनुभवों पर आधारित है। सम्भव है, पाठकों तथा हमारे शिक्षक भाइयों को यह विधि अधिक कष्टदायक सिद्ध हो; लेकिन मेरा विश्वास है कि यदि इस प्रकार पढ़ाया जाय तो बालकों की विज्ञान के प्रति अधिक रुचि उत्पन्न होगी। उनकी रटने की आदत भी नहीं पड़ेगी। साथ ही उनको विज्ञान के पढ़ने में आनन्द भी आयेगा। उदाहरण के लिए मैं यहाँ पर 'जल' के बारे में सामान्य जानकारी कराने का एक नमूना प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

जल के बारे में पढ़ने के पूर्व यह आवश्यक है कि शिक्षक तरह-तरह के जल को अलग-अलग बर्तनों में रख ले। कुछ साबुन के टुकड़े तथा कुछ मैले कपड़ों के टुकड़े भी रख ले। अँगोठी जलवा ले, थोड़ा कास्टिक सोडा और चूने का पानी भी एकत्र कर ले।

विद्यार्थी जब कक्षा में आ जायें तो शिक्षक उनसे कहे—“बच्चो, आज हम-तुम एक ऐसी वस्तु के बारे में विचार करेंगे, उनमें यह उत्पुङ्गता उत्पन्न होगी कि वे शीघ्र जान लें कि वह वस्तु कौन-सी है।

फिर विद्यार्थियों से निम्न प्रश्न करें :—

- | | |
|---|---------|
| १—कुएँ से तुम वाल्टी में क्या भरते हो ? | 'पानी' |
| २—तालाब में तुम किससे नहाते हो ? | 'जल से' |
| ३—नदी और झरने में क्या बहता है ? | 'पानी' |
| ४—वर्षा में क्या बरसता है ? | 'जल' |
| ५—समुद्र किस चीज से भरा है ? | 'जल से' |

आज हम लोग जल या पानी के बारे में कुछ विचार करेंगे। पहले यह बताओ कि यह पानी हमें कहाँ-कहाँ से मिलता है ? उत्तर में बालक स्वयं आपके प्रश्नों एवं जल के स्रोतों को उँगलियों पर गिनकर उत्तर देंगे। वे कहेंगे कि कुआँ, तालाब, नदी, झरने और वर्षा से हमें जल मिलता है।

अब मीठा और खारा पानी बच्चों को थोड़ा पीने को कहें तथा फिर उनसे ही उसका स्वाद पूछें। उत्तर भी वे ठीक ही देंगे कि अमुक जल मीठा है और अमुक नमकीन या खारा। अब उनसे पुनः प्रश्न कीजिए। स्वाद की दृष्टि से जल कितने प्रकार का हुआ ? वे कहेंगे दो प्रकार का। पुनः प्रश्न करें कौन-कौन-सा ? इस बार वे कहेंगे—मीठा और खारा।

अब कुछ विद्यार्थियों को निकट बुलाइए, प्रत्येक के हाथ में एक-एक कपड़े का तथा साबुन का टुकड़ा दे दें। कपड़े पर अलग-अलग तरह का जल डालें और उनसे साबुन लगाने को कहें। कुछ समय के बाद उनसे प्रश्न करें, साबुन लगाने पर तुम्हारे हाथों में सफेद-सफेद क्या लग गया है ? उत्तर में वे कहेंगे— झाग, या फेन। अमुक-अमुक विद्यार्थी तब से साबुन लगा रहे हैं, लेकिन उनके हाथों में झाग क्यों नहीं लगा ? पुनः प्रश्न करें—

कितने बालकों के हाथों में झाग लगा है ?

कितने बालकों के हाथों में झाग नहीं लगा है ?

क्या कारण है कि कुछ के हाथों में झाग लगा है और कुछ के नहीं ?

इस प्रश्न के अनेक उत्तर मिलेंगे जैसे—जिनके हाथों में झाग नहीं लगा है उनका साबुन खराब होगा। या उन्होंने अच्छी तरह रगड़ा ही न होगा। जो पहला उत्तर दें उन्हें निकट बुलाकर दिखायें कि सब एक ही साबुन के टुकड़े हैं। दूसरा उत्तर देने वालों से कहें कि अच्छा तुम्हीं रगड़ कर देख लो। कुछ देर में हार कर अपने गलत उत्तर का स्वयं अनुभव वे कर लगे। कुछ विद्यार्थी कहेंगे पानी खराब होगा। उनके उत्तर पर इनको प्रोत्साहित कीजिए।

इस तरह साबुन लगाने पर पता चला कि जल दो प्रकार का होता है। पहला, जिसमें साबुन लगाने पर अधिक झाग निकला, इसे हल्का या मृदु जल कहते हैं। दूसरा, जिसमें साबुन लगाने पर झाग नहीं निकला। इसे भारी या कठोर जल कहते हैं। अब बताओ—

जल कितने प्रकार का हुआ ? (दो)

वे दोनों प्रकार कौन-कौन हैं ? (हल्का और भारी)

जिन-जिन बर्तनों के जल से झाग नहीं निकला उनको अँगीठी पर गरम होने दें। बालकों से कहें कि जब पानी उबलने लगे तो आपको बता दें।

विज्ञान के अध्यापन में पाठ की कोई सीमा नहीं होनी चाहिए और न अध्यापक को केवल उतने ही कामों तक सीमित रहना चाहिए, जितना पाठ में लिखा है। जिस समय उत्सुक बालक पानी के उबलने की प्रतीक्षा करें, उस बीच उनको अन्य सामान्य बातें भी बतायी जा सकती हैं। जैसे—

१—बर्तन तो गरम हो जाता है, लेकिन लकड़ी नहीं होती, क्यों ?

२—पानी जब गरम होने लगता है तो नीचे से बुलबुले उठते क्यों दिखायी देते हैं ?

३—भाप या वाष्प क्या है ?

इससे समय के सदुपयोग के साथ-साथ बालकों का ज्ञानवर्धन भी होगा और उनका सामान्य ज्ञान बढ़ेगा। प्रत्येक बर्तन का कठोर या भारी पानी जब गरम हो जाय तो ठण्डा

होने के बाद पुनः उसमें साबुन लगाने को कहें। जब कुछ विद्यार्थियों के हाथों में झाग लग जाये तो प्रश्न करें—क्या कारण है कि जिस जल में पहले झाग नहीं उठा था उसमें अब झाग उठने लगा है ? सोच कर उत्तर देने को कहिए।

इससे बालकों की विचारशक्ति में वृद्धि होगी। यदि वे उत्तर दें कि कठोर जल की कठोरता दूर हो गयी होगी तो उनको प्रोत्साहित करें। यदि वे उत्तर न दें तो आप स्वयं उत्तर दे दें। साथ ही कहें कि ऐसी कठोरता जो उबालने से दूर हो जाती है 'अस्थायी कठोरता' कहलाती है। उबालने पर तल में जो वस्तु एकत्र हो गयी है वही कठोरता का कारण थी। ऐसी कठोरता को चूने का पानी मिलाने से भी दूर किया जा सकता है। इससे भी कठोरता प्रदान करने वाली वस्तु तल में बैठ जायेगी। यह प्रयोग भी बालकों के सामने प्रदर्शित कर दें।

दूसरा प्रश्न करें—क्या कारण है कि किसी-किसी जल में उबालने पर भी झाग नहीं उठता ? बालक स्वयं उत्तर दे देंगे कि इसकी कठोरता दूर नहीं हुई है। अतः जिस जल की कठोरता उबालने या चूने का पानी मिलाने से दूर नहीं होती उसे 'स्थायी कठोरता' कहते हैं। इस पानी में कास्टिक सोडा मिलाने को कहें।

यहीं सावधान भी कर दें कि कास्टिक सोडा को कभी हाथ से न छुएँ। कास्टिक सोडा डालकर पानी को हिला दें। कुछ समय बाद सफेद वस्तु तल में बैठ जायेगी। अब इस जल में भी साबुन लगाने को कहें। कुछ समय में इसमें भी झाग उठने लगेगा। अब बालकों से पूछें कि झाग निकलने का क्या कारण है ? वे स्वयं उत्तर देंगे कि इसकी भी कठोरता दूर हो गयी है। अब प्रश्न करें—कैसे ? उत्तर मिलेगा—'जिस वस्तु के कारण कठोरता थी वह तल में एकत्र हो गयी है।'।

अब सम्पूर्ण पाठ की प्रश्नों द्वारा पुनरावृत्ति कर दें। जैसे—

१—हमें जल कितने प्रकारों से मिलता है ?

२—उनके नाम बताओ ?

३—स्वाद के आधार पर जल कितने प्रकार का होता है ?

४—कौन से जल में झाग उठता है ?

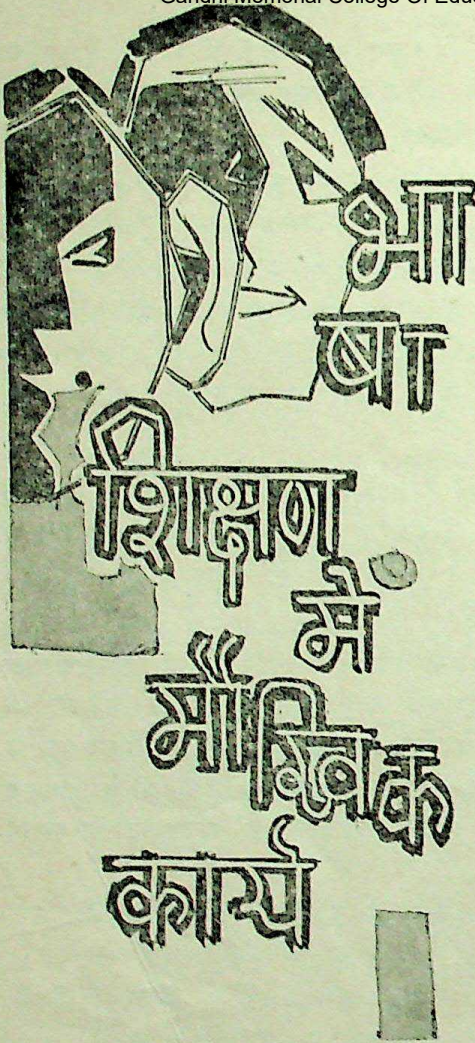
५—किस जल में झाग नहीं उठता ?

६—झाग के आधार पर जल कितने प्रकार का होता है ?

७—अस्थायी कठोरता का क्या अर्थ है ?

८—स्थायी कठोरता हम कैसे समझेंगे ?

शेष पृष्ठ ३१ पर



ओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ

हमारे विद्यालयों में भाषा की शिक्षा के अन्तर्गत रचना को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इसके लिए अलग से घण्टे भी रखे जाते हैं और शिक्षक बालकों से किये गये कार्य का विवरण, निबन्ध तथा लेख इत्यादि लिखा कर रचना के कार्य को पूरा कराने का प्रयास करते हैं। इस कार्य से हमारे इस दृष्टिकोण का पता चलता है कि हम रचना का महत्व लिखित रूप में ही मानते हैं, इस कारण लेखन पर जोर देने की चेष्टा की जाती है। परन्तु Bacon ने कहा है—“Good waiting is simply more carefully considered speech” अच्छा लेखन-कार्य केवल अधिक सावधानी से तैयार किया हुआ भाषण ही है। वास्तव में मौखिक कार्य अच्छी रचना की आधारशिला है। यह एक प्रकार से निरपेक्ष विषय है। इसका अस्तित्व ही स्वतन्त्र है। केवल प्रश्नों के उत्तर या किये गये कार्य पर वार्तालाप से मौखिक कार्य पूरा नहीं हो जाता।

मौखिक कार्य में मुख्य बात है—अन्तःप्रेरणा (Initiative) और स्वाभाविक प्रवाह (Spontaneous utterance) की। किसी के कहने या पूछने पर जो बात कही जाती है, उसमें अपनापन नहीं आता। बालक जब अपनी प्रेरणा से, स्वतन्त्र रूप से कुछ बोलते हैं तो उससे उनके व्यक्तित्व का विकास होता है और उनमें शक्ति आती है। मौखिक अभिव्यक्ति-करण इस प्रकार नागरिकता की शिक्षा का अजेय अस्त्र बन जाता है। नागरिकशास्त्र के नियमों को रटाकर कोई अच्छा नागरिक नहीं बन सकता। लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए तो ऐसे लोगों की जरूरत है जो दूसरे की बात को अच्छी तरह समझ सकें और अपनी बात को सशक्त ढंग से कह सकें। टाम किन्सन का इस सम्बन्ध में मत यह है कि जो अच्छी

तरह बोल नहीं सकता वह दूसरे की बात को ठीक से सुन समझ भी नहीं सकता। (Looseness of speech inevitably reacts on thought—a slovenly speaker is again an incapable hearer.)

इस थोड़े से विवेचन से तात्पर्य यह है कि मौखिक शिक्षा को भाषा की शिक्षा में भाषा के अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इस कार्य के प्रति शिक्षकों में जो एक प्रकार की उदासीनता है उसे दूर कर इसे स्वतंत्र विषय के रूप में लेना चाहिए। हम जानते हैं कि पाठ्य-विषय तथा परीक्षा में स्वतंत्र स्थान न मिलने के कारण ही इस अंग की इतनी उपेक्षा की जाती है परन्तु भाषा के शिक्षक को यह भली प्रकार जान लेना चाहिए कि यदि भाषा अपने विचारों को शब्दों द्वारा व्यक्त करने का एक शक्तिशाली और नैसर्गिक साधन है, तो मौखिक कार्य उस अभिव्यक्ति का प्रथम द्वार है। बालक जब सृष्टि की नवीनताओं और समाज की विचित्रताओं के सम्पर्क में आता है और इस सारे जगत को वह एक कौतूहल की दृष्टि से देखता है तो उसके मानस में इन कोमल भावनाओं को व्यक्त करने का एक उफान उठता है, वह आलोकित हो उठता है, उस समय उसके पास अपने महाकाव्य को प्रकट करने के लिये बहुत थोड़े से शब्द होते हैं पर उस अपनी टूटी-फूटी, अधूरी, अटपटी, व्याकरण-विहीन भाषा में उस काव्य की रचना कर उसे विचित्र प्रकार का सन्तोष होता है, उसका व्यक्तित्व अन्दर से बाहर आता है। उस समय शिक्षक का कर्तव्य है कि उसकी इन कल्पनाओं को बाल-साहित्य के प्रांगण में प्रस्फुटित होने का अवसर दें। उस समय उपयुक्त शब्दों तथा विशुद्ध भाषा की जरूरत नहीं। जरूरत है—बोलचाल की भाषा में उन भावनाओं के व्यक्त होने की। लैम्बोर्न (Lamborn) ने तो यहाँ तक कह डाला है कि—“Pompous phrases are more objectionable than dialect or even slang”. इसी सम्बन्ध में उसने और आगे लिखा है कि—इस अवस्था में केवल बालक की रुचि और बोलने की स्वतंत्रता पर ही विशेष ध्यान देने की जरूरत है, तथ्यों की सत्यता और व्याकरण सम्मत भाषा की नहीं। (Interest and freedom of utterance are much more important than accuracy of grammar and even of fact.)

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि मौखिक रचना में शिक्षक भाषा की शुद्धता और सरलता तथा स्पष्ट और निर्दोष उच्चारण के प्रति उदासीन हो जाये, यह नहीं। यह तो इस प्रकार की रचना का लक्ष्य भी होना चाहिये परन्तु यह अभिव्यक्ति स्वतः प्रेरित हो और बालक की रुचि अनुकूल हो, यह बात ध्यान में रखने की है। अध्यापक के प्रश्न पूछने पर या कहे हुए किसी विषय पर वार्तालाप करने में मौखिक कार्य तो हो जाता है पर उसकी आत्मा स्वतः प्रेरित होकर बोलने में ही है। शिक्षक इस व्यवधान को पाटने की कोशिश करे। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक की अन्तःदृष्टि बालक के उद्बलित, उल्लसित तथा जिज्ञासु अन्तर तक पहुँच जाय और फिर वह उसकी अटपटी रचना के लिये वातावरण

तैयार कर दे। उसे उस रचना का अवसर दे तथा स्वयं भी उस आनन्द को ले। यदि बच्चे को यह पता चल जाय कि शिक्षक उसकी रचना से आनन्दित होता है तो उसे कितनी प्रसन्नता हो और कितना उत्साह बढ़े, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यह अवसर बालक और शिक्षक के बीच भक्त और भगवान के मिलन (Communion with God) जैसा आनन्द बखेर देगा, जिसमें दोनों मिलकर थोड़ी देर के लिये एक हो जायेंगे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की प्रेरणाएँ कक्षा में चित्र दिखाकर नहीं पैदा की जा सकतीं और न आदेशों से ये अवसर निकल सकते हैं। इनके लिये तो समाज और प्रकृति की जीती-जागती तस्वीरों को देखने-दिखाने तथा उनमें रुचि और भाग लेने पर है। अध्यापक पुस्तकों का एजेन्ट नहीं, पाठ्य-विषय का प्रतिनिधि नहीं, विद्यालय की चहारदीवारी का मनुष्य नहीं, वह तो इस चलती-फिरती दुनिया का एक ऐसा मानव है जो चहारदीवारी में आये हुए कच्चे मस्तिष्कों की खिड़कियों को खोलकर विश्व के ज्ञान और प्रकाश आने का मार्ग बना देता है। यदि वही सिमट कर रह गया तो बाहर के चित्रों में तथा बालक के मानस-पट के चित्रों में कैसे मेल बिठा पायेगा? मौखिक रचना इन दोनों के बीच की लड़ी है—उसके लिये अपने दृष्टिकोण को ठीक कर सही दिशा में कदम उठाने की जरूरत है।

—०—

गाँधी जी का जीवन दर्शन

लक्ष्य—ईश्वरानुभूति अथवा सत्यानुभूति।

साधन—मनसा, वाचा, कर्मणा तथा अहिंसा।

खलीलुल रब

चीन और भारत के वर्तमान संघर्ष का व्यापक और गहरा असर हमारे जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ा है। शिक्षा के क्षेत्र में इस का यह परिणाम हुआ है कि शिक्षा के सुधार और पुनः संगठन की चर्चा जोरों से चल रही है। देश के प्रमुख व्यक्ति और बहुत से शिक्षा-विशेषज्ञ आये दिन यह कह रहे हैं कि चीन ने देश पर हमला करके हमें जो चुनौती दी है उस का मुकाबला करने के लिये जरूरी है कि हम शिक्षा योजनाओं में आवश्यक परिवर्तन और सुधार करके उसे इस योग्य बनायें कि वह हमारी वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

इन विचारों को सामने रखते हुए जब हम बुनियादी शिक्षा का अध्ययन करते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि उसमें विशेष सुधार या परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। यह एक सम्पूर्ण शिक्षा योजना है। उस के आधार में जीवन के उच्च आदर्श हैं और उसकी पद्धति में नवीन विचार-धाराओं का समावेश है। वह

हमारी वर्तमान आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करती है और एक स्वस्थ मजबूत भावी समाज की कल्पना करती है। इसलिये शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन और सुधार की मांग करने से पहले यह जरूरी है कि हम एक बार फिर बुनियादी शिक्षा के मौलिक सिद्धान्तों का मनन करें। सम्भवतः हम इस नतीजे पर पहुँचें कि इस समय न उसकी विषयवस्तु में किसी बड़ी तबदीली की आवश्यकता है और न पाठ्यक्रम में सुधार की ! जरूरत केवल इस बात की है कि बुनियादी शिक्षा के मौलिक सिद्धान्तों को सामने रखकर हम उत्साह और विश्वास से अपनी पाठशालाओं का संचालन करें।

बेसिक शिक्षा के मूल सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त स्वावलम्बन का है। इस सिद्धान्त की ओर कुछ कारणों से अभी तक उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना कि देना चाहिये था।

बेसिक शिक्षा के
मौलिक सिद्धान्तों में
स्वावलम्बन का सिद्धान्त

देश की वर्तमान स्थिति में इस के महत्व को समझाने की आवश्यकता नहीं है। आज चारों ओर से उत्पादन बढ़ाने की आवाज उठ रही है। अभी थोड़े दिन पहले प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय विकास समिति के सामने भाषण देते हुए कहा था कि हमारी बुनियादी पाठशालाओं को ऐसी चीजें बनानी चाहिये जो लड़ाई का सामान तैयार करने में काम आ सकें। ऐसी हालत में बेसिक शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले सभी स्तर के कर्मचारियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर पुनः विचार करें और उसे कार्यान्वित करने की कोशिश करें।

बुनियादी शिक्षा योजना में स्वावलम्बन के सिद्धान्त को दो अर्थों में इस्तेमाल किया गया है। एक साधारण अर्थ तो इसका यह है कि बुनियादी पाठशाला से पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के बाद छात्र स्वावलम्बी बन सकें। वे किसी शिल्प में इतना कौशल प्राप्त कर लें कि आवश्यकता पड़ने पर जीविकोपार्जन का साधन बना सकें। समाज में प्रवेश करने पर वह निकम्मे न सिद्ध हों। इस लक्ष्य को ध्यान में रखने से शिल्प शिक्षा की उपयोगिता और सार्थकता स्पष्ट हो जाती है और वह किसी हद तक देश की बेरोजगारी दूर करने में सहायक हो सकती है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए वर्षा सम्मेलन में गांधी जी ने कहा था :

मेरी दृष्टि में इस (बुनियादी शिक्षा) को स्वावलम्बी बनाना उसकी दक्षता की कसौटी है। सात वर्ष की शिक्षा के पश्चात् बालक को अपनी पढ़ाई की फीस अदा करनी चाहिये और उसे कमाने योग्य बनना चाहिये। गांधी जी स्वावलम्बन के सिद्धान्त को कितना महत्व देते थे उसका अनुमान उनके निम्नलिखित कथन से हो सकता है। स्वावलम्बन शीर्षक देकर उन्होंने ११ सितम्बर १९३७ के 'हरिजन' में लिखा था।

“यदि शासन ७ वर्ष से १४ वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी लेता है और उत्पादक कार्य द्वारा उनके मस्तिष्क का विकास करता है, और फिर भी वे स्वावलम्बी नहीं बनते तो अवश्य ही या तो सरकारी स्कूल धोखा है या अध्यापक मूर्ख।”

स्वावलम्बन का दूसरा अर्थ यह है कि बालक के श्रम और उत्पादक कार्य से विद्यालय को आय हो सके। इस सम्बन्ध में भी गांधी जी के ये विचार हैं :

१—मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थियों के श्रम के उत्पादन से अध्यापक का व्यय निकल सके।

२—विद्यार्थी इस योग्य बनें कि वे अपनी पढ़ाई का खर्च अदा कर सकें—उनके श्रम की आय से भूमि, भवन और साज सज्जा पर नहीं खर्च किया जा सकता।

गांधी जी के उन विचारों पर काफी टीका टिप्पणी हुई और वर्षा शिक्षा योजना के निर्माताओं ने इन विचारों के हर पक्ष की समीक्षा करते हुए यह आशा प्रकट की थी कि यदि नियोजित और व्यवस्थित ढंग से उत्पादक कार्यों द्वारा शिक्षा दी जाय, तो अवश्य ही

विद्यालय को कुछ आय होगी। इस प्रसंग में स्वावलम्बन का यह अर्थ होता है कि बुनियादी पाठशालाओं में जो कार्यकलाप शिक्षा के माध्यम बनाये जायें, वे उत्पादक हों। उत्पादन का प्रश्न बड़ी हद तक इस बात से सम्बन्धित है कि शिल्प की शिक्षा या बालकों के श्रम का लक्ष्य क्या है और उत्पादक कार्य किस प्रकार कराये जाते हैं। जहाँ तक इस लक्ष्य की उपादेयता का प्रश्न है इस पर विवाद की आवश्यकता नहीं है। विवाद का मतलब तो यह होगा कि हमें बुनियादी शिक्षा का यह सिद्धान्त ही मान्य न हो। संसार के सभी प्रगतिशील देशों में आज शिक्षा की जो नई योजनाएँ बनी हैं, उन सब में उद्योग की शिक्षा और श्रम का महत्वपूर्ण स्थान है। रूस ने तो इस दिशा में यहाँ तक कदम बढ़ाया है कि माध्यमिक शिक्षा स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को दो या तीन दिन कम से कम दो घंटे के लिए किसी कृषिकाम या कारखाने में काम करना पड़ता है।

बेसिक स्कूल के अध्यापकों को उत्पादन के सिलसिले में विशेष प्रकार की जो कठिनाइयाँ होती हैं, वे कुछ इस प्रकार की हैं।

१—उचित प्रकार की सामग्री पर्याप्त मात्रा में और निरन्तर न मिलना।

२—उत्पादित वस्तुओं की निकासी का प्रबन्ध न होना।

३—अध्यापक का स्वयं शिल्प में पूर्ण दक्ष न होना।

जहाँ तक पहली दो समस्याओं का सम्बन्ध है, उनके निराकरण पर अध्यापक का अधिकार नहीं है? इसलिए इस सम्बन्ध में अध्यापकों को सुझाव देने की आवश्यकता नहीं है। उनसे केवल यह आशा की जाती है कि उन्हें जो सामान जिस मात्रा में मिले उसका वे सदुपयोग करें। पर्याप्त मात्रा में बराबर सामान न मिलने से समवायित पाठ न चल सकेंगे और उत्पादन की मात्रा भी कम होगी। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उत्पादन शून्य हो जाय और कार्य का कोई स्तर न बन सके। जहाँ तक तीसरी समस्या का प्रश्न है उसके हल करने के लिए दीक्षा विद्यालयों को ध्यान देना होगा। उन्हें इस ओर पूरा ध्यान देना चाहिए कि शिल्प शिक्षा में सारे छात्र पर्याप्त दक्षता प्राप्त कर लें। जो अध्यापक प्रशिक्षित नहीं हैं या प्रशिक्षित होने पर भी अपने अन्दर कमी पाते हैं, वे उन लोगों से सहायता लें जो अपने काम में दक्ष हों।

हमारे प्रदेश के सभी बेसिक स्कूलों में कताई बुनाई और कृषि तथा बागवानी मुख्य शिल्प के रूप में चलते हैं। इनके अतिरिक्त सीनियर बेसिक स्तर पर और भी कई शिल्प पढ़ाये जाते हैं। प्रदेश में तीसरी पंचवर्षीय योजना समाप्त होने पर लग-भग ६५ हजार जूनियर बेसिक स्कूल हो जायेंगे। हो सकता है कि इनमें से कुछ नये खुले हुए स्कूलों के पास उत्पादन के साधन अभी न हों। फिर भी यदि हम केवल ४० हजार स्कूल ऐसे मान लें जिनमें थोड़ी बहुत भूमि भी उपलब्ध है और थोड़ी बहुत कताई होती है, तो उत्पादन के न्यूनतम लक्ष्य निम्नांकित हो सकते हैं :

१—कताई बुनाई—५ गुंडी सूत प्रतिमास मूल्य लगभग १)

२—कृपि—साग सब्जी १।२ किलो प्रतिदिन औसत ।

पहले लक्ष्य के अनुसार ४० हजार बेसिक स्कूलों से ४० हजार रुपये प्रतिमास की आय सम्भव है और इसी प्रकार २० हजार किलो सब्जी हो सकती है, जिसका मूल्य २५ नये पैसे प्रति किलो की दर ले ५ हजार रुपये हुए । यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि यदि इसी प्रकार सीनियर बेसिक स्कूल और हर स्तर के दीक्षा विद्यालयों में उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित हों तो उत्पादन की मात्रा बहुत बढ़ सकती है ।

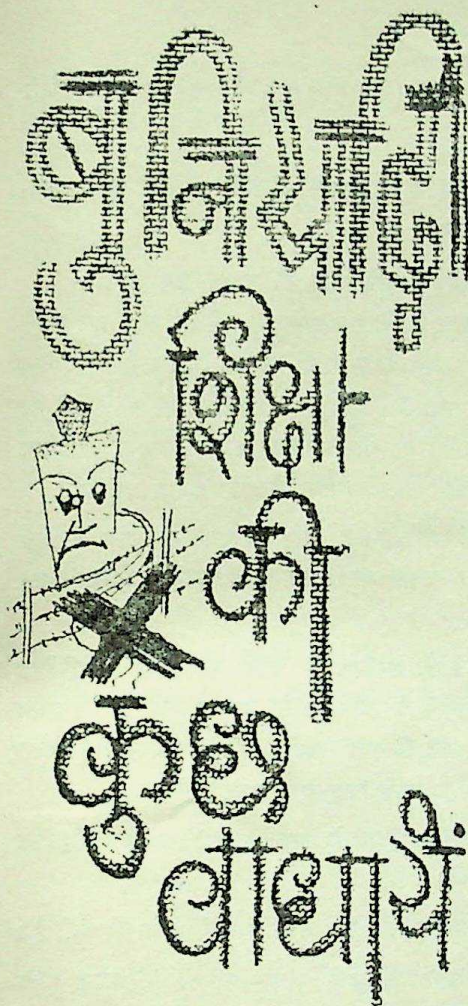
इस तरह हम देखते हैं कि यदि बुनियादी पाठशालाओं में केवल उपलब्ध साधनों का भली प्रकार उपयोग किया जाय और उत्पादन के निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने पर बल दिया जाय तो देश में उत्पादन बढ़ाने की दिशा में एक ठोस कदम होगा ।

कहने में तो यह बात बड़ी सरल जान पड़ती है और ऐसा लगता है कि इसे कार्यान्वित करना कोई कठिन कार्य नहीं है, परन्तु अनुभव इसके विपरीत है । इसलिए उत्पादन की दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक श्रम के प्रति पुरानी धारणाओं को छोड़े और नई चेतना और नये उत्साह के साथ कार्य करे । देश और विदेश के हजारों स्कूल इस बात के साक्षी हैं कि उत्पादन को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना सम्भव है ।

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट है कि यदि शिल्प का कार्य सुचारु रूप से हो तो उत्पादन अवश्य होगा । उत्पादित वस्तुओं की विक्री भी हो सकती है और उनमें से कुछ चीजें छात्रों के प्रयोग में भी आ सकती हैं । जैसे साग सब्जी का बच्चों के जलपान में प्रयोग और बुने हुए कपड़ों का यूनीफार्म में प्रयोग । इस सम्बन्ध में गाँधी जी का यह विचार था कि विद्यालय को स्वावलम्बी बनाने के लिए यह जरूरी है कि उत्पादित वस्तुएँ सरकार खरीदे ।

स्वावलम्बन के आदर्श का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि इससे बालकों में आत्म-विश्वास और आत्मनिर्भरता पैदा हो । यह लक्ष्य शिल्प तथा श्रम की सुनियोजित व्यवस्था से सुलभ होता है । बालक मिलजुल कर कार्य योजना बनाते हैं, उसे संचालित करते हैं, उसमें जो कठिनाइयाँ आती हैं, उन्हें दूर करने के उपाय सोचते हैं । इस प्रकार उनमें सहानुभूति, सहयोग और आत्म-निर्भरता के गुण विकसित होते हैं । इन गुणों के विकास का शैक्षिक महत्व स्वयं स्पष्ट है । इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं ।

इन सब पहलुओं से विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बेसिक शिक्षा में स्वावलम्बन का सिद्धान्त देश की वर्तमान परिस्थिति में अत्यन्त महत्वपूर्ण है । बेसिक शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोग यदि इस सिद्धान्त को साकार बनाने का पूरा यत्न करें तो इससे न केवल बेसिक शिक्षा की उपयोगिता सिद्ध होगी बल्कि देश सेवा में भी सहयोग मिलेगा ।



एल० पी० खन्ना

आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व हमारे देश में शिक्षा-शास्त्रियों ने यहाँ की प्रचलित शिक्षा प्रणाली के दोषों तथा उससे होने वाले कुपरिणामों पर दृष्टिपात किया। देश की यह माँग थी कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन किया जाय। महात्मा गांधी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने जुलाई सन् १९३७ में 'हरिजन' में लिखा :

“शिक्षा का लक्ष्य बालक एवं मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का सर्वोपरि विकास करना है, साक्षरता शिक्षा नहीं है, अतएव बालक की शिक्षा का आरम्भ किसी लाभदायक हस्तकार्य से हो ताकि प्रारम्भ से ही वह शिक्षा के द्वारा उत्पादन करने योग्य बन सकें। पाठशालाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए बालकों द्वारा निर्मित वस्तुओं को राज्य सरकार खरीदे।”

इसके परिणामस्वरूप वार्धा में अक्टूबर १९३७ में शिक्षा-शास्त्रियों का एक सम्मेलन महात्मा गांधी की अध्यक्षता में अभिजित हुआ। इस सम्मेलन के

सुझावों के अनुसार डा० जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में कुछ प्रमुख शिक्षा-विशारदों की एक समिति विस्तृत पाठ्यक्रम तैयार करने के लिये नियुक्त की गई जिसने मार्च सन् १९३८ में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित किया। इस समिति ने वार्धा शिक्षा योजना को स्वीकार कर लिया। कांग्रेस ने भी अपनी हरीपुरा अधिवेशन में मार्च सन् १९३८ में इसको स्वीकार किया।

डा० जाकिर हुसेन समिति की रिपोर्ट के आधार पर कुछ प्रान्तों में इस ओर प्रयास किया गया।

(१) शिल्प, सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण के आधार पर अन्य विषयों की शिक्षा दी जाये।

(२) यह शिक्षा मनुष्य के जीवन के लिए (पैदा होने से मरने तक) उसके प्रतिदिन के जीवन द्वारा होनी चाहिए ।

(३) इसके द्वारा उस समाज का निर्माण हो जिसमें ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, धनी-गरीब का भेद-भाव न हो तथा आपस में भाईचारा हो ।

(४) बच्चे स्वावलम्बी बनें तथा उनमें आत्मनिर्भरता की भावना पैदा हो ।

आज हमारे प्रांत में सभी बेसिक स्कूल हैं लेकिन प्रश्न यह है कि क्या हम अपने प्रयास में सफल हुए हैं । यदि नहीं तो क्यों ? अधिकांश लोगों का यह विचार है कि बेसिक शिक्षा के कारण पढ़ाई का स्तर गिरता जा रहा है । यह विचार उन्हीं लोगों का है जो या तो बेसिक शिक्षा के बारे में बिलकुल नहीं जानते या बेसिक स्कूलों की कठिनाइयों पर ध्यान नहीं दिया है । मैं आज इन कठिनाइयों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा ।

शिल्प का कार्य सभी बेसिक स्कूलों में होता है लेकिन केवल नाममात्र के लिये क्योंकि उनको सुचारु रूप में चलाने में तथा उनसे अनुबन्धित पाठ पढ़ाने में निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं :—

[१] अधिकांश अध्यापक शिल्प-कार्य की उपक्रिया के 'क्यों' और 'कैसे' से परिचित नहीं हैं । वे अपने जिले की ऐतिहासिक इमारतों के इतिहास से अवगत नहीं हैं । वे अपने जिले के त्योहारों व मेलों के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखते । ऐसी दशा में अनुबन्धित पाठ की आशा करना भूल है । अनुबन्धित पाठ उनके लिए एक समस्या है ।

[२] पाठ्यक्रम में ऐसे पाठों का समावेश है जिन्हें क्राफ्ट, सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता ।

[३] शिल्प कार्य के लिए उचित साज-सज्जा तथा खेतों के लिये भूमि की कमी है ।

[४] शिल्प के लिए कच्चा माल उचित समय से अध्यापकों को नहीं प्राप्त होता और यदि यह सम्भव न हो सका तो एक दूसरी समस्या उनके सामने रहती है । वह यह कि जिस कच्चे माल की उन्हें आवश्यकता है वह नहीं मिलता । उदाहरण के तौर पर यदि किसी स्कूल में रूई की आवश्यकता है तो वहाँ धुनकी पहुँच जाती है । यदि तकली की आवश्यकता है तो धुनकी पहुँच जाती है । इससे जो थोड़ा बहुत कार्य हो सकता है वह भी नहीं हो पाता ।

[५] हस्तकार्य द्वारा बनी वस्तुओं के विक्रय करने का कोई उचित प्रबन्ध नहीं है ।

[६] अधिकांश बनी हुई वस्तुएँ बिक्री के योग्य नहीं होतीं । जो थोड़ी-बहुत वस्तुएँ तैयार होती हैं वे इतनी सुन्दर तथा सुडौल नहीं होतीं कि बिक सकें । इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी यदि कुछ वस्तुएँ बेचने योग्य हुईं तो उनके बेचने का कोई प्रबन्ध

नहीं है जिसके कारण ये चीजें या तो सड़ जाती हैं या दीमकों का भोजन बन जाती हैं। ऐसी दशा में उत्पादन की आशा करना या बच्चों में आत्मनिर्भरता की भावना पैदा करने का प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि इसका परिणाम बच्चों पर बुरा पड़ता है।

जीवन-शिक्षा जीवन के प्रतिदिन के व्योरे द्वारा भी उचित रूप से नहीं हो पा रही है, क्योंकि—

[१] जो कुछ प्रयास स्कूलों में इस ओर होता भी है वह घर के दूषित वातावरण से नष्ट हो जाता है, क्योंकि छात्रों को वहाँ अधिक समय तक रहना पड़ता है।

[२] अध्यापकों की कथनी और करनी पृथक् है। मेरे इस कथन का अभिप्राय यह है कि अधिकांश अध्यापक बालकों को एक निश्चित स्थान पर थूकने का आदेश देते हैं परन्तु वे उसका स्वयं पालन नहीं करते। बालकों को यह आदेश दिया जाता है कि वे स्वच्छ रहें परन्तु अध्यापक उसका स्वयं पालन नहीं करते। दाँत गन्दे रहने से क्या हानियाँ होती हैं इस पर वह भाषण देंगे लेकिन उसकी आदत डालने का कोई प्रयास नहीं करेंगे।

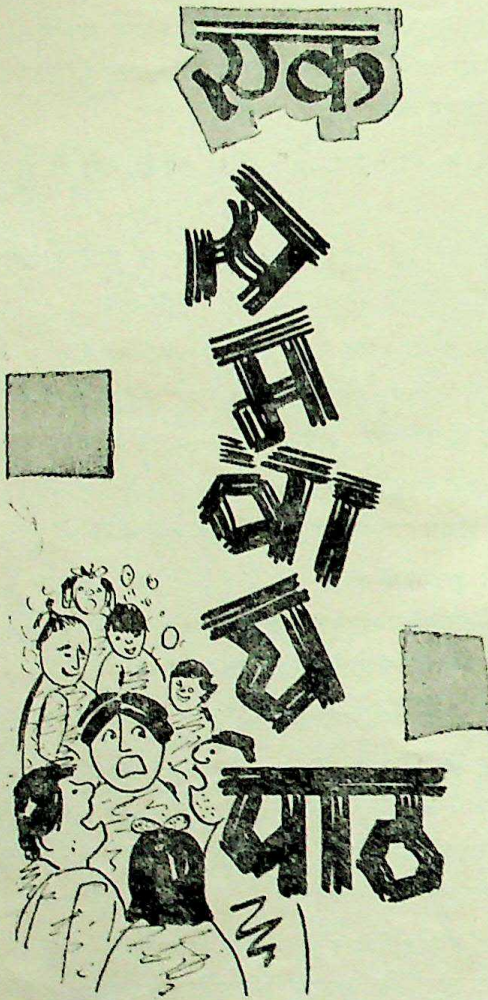
[३] प्रायः अध्यापक छात्रों की आदतों में शीघ्र परिवर्तन चाहते हैं। ऐसा न होने पर वे निरुत्साह होकर सोचने लगते हैं कि छात्रों ने जो दूषित आदतें ग्रहण कर ली हैं उनका निराकरण सम्भव नहीं है। अतः वे अपने थोड़े से प्रयत्नों को भी छोड़ देते हैं।

बेसिक स्कूल सामाजिक जीवन के केन्द्र क्यों नहीं बन सके ?

इस कार्य के लिये स्कूलों में कोई धन नहीं है। बिना धन के कोई भी उत्सव नहीं मनाया जा सकता और न कोई योजना ही चल सकती है। छात्र गाँव के किसी मेले में भी भाग नहीं ले पाते। इन्हीं कारणों से संरक्षकों में सम्पर्क नहीं हो पाता जिसके कारण संरक्षकों को स्कूलों के कामों में रुचि नहीं होती।

इसके अतिरिक्त हमें बेसिक स्कूल के पढ़ाई के स्तर को ऊँचा करने के लिये भी ध्यान देना होगा। इस समय हमारे बेसिक स्कूलों के अध्यापकों के पास पाठन-सामग्री का अभाव है क्योंकि अधिकांश अध्यापकों में पाठन-सामग्री तैयार करने की योग्यता भी नहीं है। दूसरे उनके पास ऐसी पुस्तकें भी नहीं हैं जिससे वे सहायता लेकर पाठन की सहायक सामग्री तैयार कर सकें।

यदि हमें बेसिक शिक्षा को वास्तविक रूप से चलाना है तो यह आवश्यक है कि हम इन छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दें और इन कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करें। इस सम्बन्ध में मैं कुछ अपने सुझाव अगले अंक में देने का प्रयास करूँगा।



एक शिक्षक

दिनांक—फरवरी का दूसरा
सप्ताह ।

वर्ग—तीसरा ।

बच्चों की संख्या—१६

समय—सवेरे के ४०-४०
मिनट के दो घंटे ।

प्राकृतिक वातावरण

कई दिनों की लगातार वर्षा और बदली के बाद दो दिनों से धूप निकली है। सरदी थोड़ी कम हुई है; लेकिन कुछ समय धूप में रहना अच्छा लगता है। पाठशाला के हाते में कहीं-कहीं घास उग आयी है।

सामाजिक वातावरण

गाँव में कहीं-कहीं दरवाजे और दालान के सामने की उगी हुई घास साफ की जा रही है। घर-आंगन का पानी निकालने वाली नालियाँ, जो मिट्टी या कचरे से बन्द

हो गयी हैं, साफ की जा रही हैं। कहीं-कहीं लोग मिट्टी, कचरे घास और खपरैल आदि से बैठक का मैदान साफ कर रहे हैं

औद्योगिक क्रियाशीलन

पानी पड़ने के कारण खाली खेत की नम मिट्टी उलटी जा रही है। किसान गोबर और कूड़ा-कचरा खाद बनाने की जगह रख रहे हैं।

पाठ

पाठशाले के अहाते की सफाई ।

(१४७)

पूर्व तैयारी

शिक्षक द्वारा एक दिन पहले ही शाम को हाते की सफाई की सूचना दी जा चुकी है। बच्चे इसके पहले भी कई बार सफाई कर चुके हैं। उन्हें अन्य कक्षाओं के बच्चों के साथ भी सफाई करने का मौका मिल चुका है।

साधन सामग्री

१—खुरपियां ६, २—बड़ी झाड़ू ४, ३—टोकरी ३४ फावड़े १५ टाट के बोरे झोला १।

(प्रार्थना के बाद शिक्षक हाते में रुक गया। सफाई मन्त्री के सुझाव के अनुसार बच्चे सफाई के साधन लेकर शिक्षक के सामने आकर खड़े हो गये)

योजना

शिक्षक—तुम लोगों में सफाई के लिए हाते को कितने भागों में बाँटा था ?

बालक—हम लोगों ने पूरे हाते को काम की सुविधा के लिए चार हिस्सों में बाँटा था।

शिक्षक—सफाई के लिए उन्हें क्या-क्या करना है ?

बालक—हाते से घास निकालना सबसे जरूरी है।

शिक्षक—लेकिन जहाँ कागज के टुकड़े हैं, वहाँ क्या करना है !

बालक—उन्हें चुन कर रखने के लिए टाट का थैला ले लिया है।

शिक्षक—और जहाँ खपरैल के टुकड़े मिलेंगे, उन्हें किस तरह इकट्ठा करोगे ?

बालक—उसके लिए टोकरियाँ काम आयेंगी।

शिक्षक—झाड़ने के लिए बड़ा झाड़ू तो है ही; लेकिन जहाँ नालियाँ बन्द हो गयी हैं उन्हें साफ करने का क्या उपाय है ?

बालक—इसके लिए फावड़ा ले लिया गया है।

शिक्षक—लकड़ी या उपले के टुकड़े एकत्र करने के लिए एक बोरा भी ले लेना चाहिए।

एक बालक—गुरु जी, आप आज पहले हमारी टोली में रहें।

शिक्षक—ठीक है। मुझे तुम लोगों की चारों टोलियों में बराबर-बराबर समय काम करना है। अब सब लोग अपने-अपने स्थान पर टोलियों में बैठ कर काम शुरू कर दें।

प्रक्रिया

बच्चों की चारों टोलियाँ अलग-अलग हिस्से में बँट कर काम में लग गयीं। सबसे पहले कागज, रुई, लकड़ी और उपले के टुकड़े अलग-अलग चुन लिये गये। इसके बाद खपरैल के टुकड़े एक जगह इकट्ठे किये गये। फिर बच्चों ने घास निकालने का काम शुरू किया। दो बच्चों ने अपने-अपने हिस्से की नाली में भरी मिट्टी भी निकाल डाली। इसके बाद झाड़ू लगाकर घास और मिट्टी भी साफ करके एकत्र कर ली गयी। शिक्षक बारी-बारी हर टोली में शामिल हुआ और काम करने के तरीकों में जरूरत के अनुसार सुधार करता गया। जहाँ लड़के हवा के रुख के खिलाफ झाड़ू दे रहे थे वहाँ ठीक दिशा में झाड़ू देना बतलाया। जहाँ झुक कर झाड़ू देते थे वहाँ सीधे तने रह कर झाड़ू देना बतलाया। जब दस मिनट बाकी रहा तो कक्षा की सामान्य घण्टी बजने तक सफाई का काम पूरा कर लिया गया। जरूरत पर एक दूसरे की टोली की मदद की गयी और सफाई से प्राप्त उपयोगी सामानों की छँटाई शुरू कर दी गयी।

सामानों की छँटाई

घास में लिपटी हुई मिट्टी साफ करके अलग रखी गयी।

उस मिट्टी को नीची जगह में डाल कर बराबर किया गया। कुछ भुरभुरी-मिट्टी टट्टी घर के पास टिन में रखी गयी।

खपरैल को टोकरी में उठाकर दीवाल के किनारे ऊपर से गिरने वाले पानी की जगह बिछाया गया।

लकड़ी और उपले के टुकड़े बोरे में डालकर एक जगह धूप में सूखने के लिये रख दिये गये।

कागज और रुई के टुकड़े टाट के झोले में रखकर कचरे के बोरे में भर दिये गये।

सफाई से प्राप्त सामानों की छँटाई के बाद, सफाई के साधनों को साफ करके यथा-स्थान रखा गया। बालकों ने अपने हाथ-पैर धो लिये और कक्षा में आ गये।

मूल्यांकन

शिक्षक—हम लोगों ने आज जो सफाई की उसमें कौन-कौन सामान मिले ?

बालक—हरी दूब, खपरैल, कागज के टुकड़े और रुई की छीजन, लकड़ी और उपले के टुकड़े, भुर-भुरी मिट्टी।

दूसरा बालक—गुरुजी आपने मुझे झाड़ू देते समय दूसरी ओर से झाड़ू देने को क्यों कहा ?

(१४९)

शिक्षक—इसलिए कि तुम हवा के उल्टे रूख झाड़ू दे रहे थे। जानते हो, उससे तुम्हें क्या नुकसान होता ?

बालक—हम सफाई करते जाते और हवा गन्दगी उड़ाकर उसे गन्दा करती जाती।

शिक्षक—और दूसरा नुकसान क्या होता ?

बालक—गन्दगी हमारे ऊपर ही आती।

शिक्षक—अच्छा यह बतलाओ कि गन्दगी इसे क्यों कहते हैं ?

बालक—धूल, कचरे, पत्ते ये सब गन्दगी हैं।

शिक्षक—धूल से तो सारी धरती भरी हुई है। फिर धूल गन्दगी कैसे हुई ?

बालक—लेकिन पत्ता कचरा वगैरह तो गन्दगी है ही।

शिक्षक—पत्ते सभी पेड़ों में होते हैं। क्या उन्हें गन्दगी माना जा सकता है ?

बालक—नहीं गुरुजी; लेकिन फिर गन्दगी है क्या ?

शिक्षक—सोचो, अगर ये सब चीजें जिन्हें तुम गन्दगी कहते हो, अगर अपनी ठीक जगह पर रहें तो गन्दगी कही जाएगी ?

बालक—नहीं।

शिक्षक—तो इसका मतलब हुआ कि जो चीज अपने ठीक स्थान पर न रहे वह गन्दगी है।

बालक—और अगर ठीक स्थान पर कोई वस्तु रहे तो वह सफाई हुई।

शिक्षक—तुम लोगों ने जिन-जिन चीजों को सफाई करते समय प्राप्त किया और उन्हें अपने-अपने ठीक स्थान पर पहुँचाया उनकी सूची बनाकर कल इसी समय दिखलाना।

समवायी ज्ञान

शिक्षक—सफाई के लिए जो स्थान बांटे गये थे क्या उन्हें पूरा-पूरा साफ कर लिया गया है ?

बालक—जी 'हाँ, टोली नं० ३ का काम अपने पास की टोली नं० २ की मदद से पूरा हुआ।

शिक्षक—यह तो बताओ कि अहाने में किस तरह की गन्दगी मिली थी ?

बालक—घास, नीम और पीपल की पत्तियाँ, लकड़ी के टुकड़े और गोबर।

शिक्षक—और भी कुछ मिला था ?

बालक—कई कमरों के सामने रुई की छीजन और कागज के टुकड़े मिले थे ।

शिक्षक—टोली नं० ३ के लोगों को इसके अलावा क्या मिला ?

बालक—खपरैल के टुकड़े मिले । गन्ने की चूसी हुई चिपें मिलीं और घास के साथ मिट्टी भी ।

शिक्षक—ये सब चीजें जिन्हें तुम गन्दगी कहते हो क्या ये सचमुच गन्दगी हैं ?

बालक—जी हां, गन्दगी तो हैं ही । इनसे हमें बचना चाहिए ।

शिक्षक—घास गन्दगी है, मिट्टी गन्दगी है, पत्ते गन्दगी हैं । फिर यह सारी धरती पर बिखरे हैं, इनसे बचकर कहाँ जाओगे ?

बालक—नहीं नहीं, ये सब चीजें जहाँ इनकी जगह है अगर वहाँ रहें तो गन्दगी नहीं होगी ।

शिक्षक—फिर इन्हें गन्दगी क्यों कहा गया ?

बालक—अपनी उचित जगह से ऐसी जगह चली गयी थीं जहाँ इन्हें नहीं रहना चाहिए था ।

शिक्षक—तुम्हारा मतलब है कि ये अनुपयुक्त स्थान पर चली गयी थी ।

बालक—जी हाँ ।

शिक्षक—तो गन्दगी किसे कहेंगे ?

बालक—किसी चीज का अनुपयुक्त स्थान पर रहना गन्दगी कहा जायगा ।

शिक्षक—और सफाई ? अनुपयुक्त स्थान पर से किसी चीज को उठाकर उपयुक्त स्थान पर ठीक ढंग से रखना सफाई कहा जायगा ।

दूसरा बालक—तब तो कोई भी चीज गन्दगी नहीं हुई ।

शिक्षक—हाँ, मल और मूत्र भी अगर उचित स्थान पर रहे तो वह खाद बनकर सोना हो सकता है ।

नोट—इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा विभिन्न विषयों का समवायी ज्ञान कराया जा सकता है ।



हम देश शिक्षा शास्त्री

श्रीमती कृष्णा दीक्षित

“जो अपने समय का सर्वश्रेष्ठ विचारक और पुद्धिमान माना गया ”—प्लेटो

“जो स्वर्ग से दर्शनशास्त्र लाया और उसे पृथ्वी पर छोड़ गया ।”—सिसरो

‘जो नीतिशास्त्र का संस्थापक था और सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का प्रचारक ।’

—टालस्टाय

जो एक ऐसा अध्यापक था जिसने यद्यपि न कभी कुछ लिखा और न कोई स्कूल चलाया; किन्तु मनुष्य के मस्तिष्क को तर्क और चिन्तन के क्षेत्र में सक्रिय बना दिया ।

यूरोप के इतिहास में यूनान एक ऐसा प्राचीन देश है जिसने वहाँ सर्वप्रथम सभ्यता, सामाजिक व्यवस्था और संस्कृति का जन्म दिया । यह समय ईसा के ४००, ५००, वर्ष पूर्व—नगर-सभ्यता का युग था । इस समय यूनान में दो नगर विशेष उन्नति पर थे ।—स्पार्टा और एथेन्स । इन्हीं नगरों की सभ्यता ने यूरोप में उन विचारों का प्रचार और प्रसार किया जिन पर यूरोप की सभ्यता दिनों दिन फलती गई । यही से ‘शिक्षा वह साधन है जिससे हम नागरिक उत्पन्न करते हैं’ विचार का सूत्रपात हुआ । स्पार्टा और एथेन्स ने जिस यूनानी शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया उसी का विकास-क्रम हम आगे पाते चले जाते हैं ।

स्पार्टा में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य युद्ध सैनिक तैयार करना था और एथेन्स में सैनिक के साथ-साथ कुछ बौद्धिक और कलात्मक तत्वों पर भी ध्यान दिया जाता था । एथेन्स के अनुशासन में वह कठोरता नहीं दिखाई पड़ती जो स्पार्टा में थी । स्पार्टा-शिक्षा का उद्देश्य था—साहस, सैनिक कुशलता, सामाजिक नियमों का अक्षरशः पालन और बड़ों के प्रति अवि-रल श्रद्धा । उनका पाठ्यक्रम भी तदनुसार जमनास्टिक, खेल, व्यायाम, शारीरिक गठन आदि पर निर्धारित था ।

एथेन्स में कुछ अन्तर था । सात वर्ष का बालक स्कूल जाता था । बालकों को एकत्र करके स्कूल ले जाने वाला व्यक्ति जो नौकर होता था पडागाग कहलाता था । बच्चों के आचरण का दायित्व इसी पर था । एथेन्स में तीन प्रकार के स्कूल-जहाँ थे, (१) पढ़ना,

लिखना और कुछ गणित सिखाया जाता था। (२) म्यूजिक स्कूल—जहाँ संगीत और काव्य पढ़ाया जाता था। (३) जमनास्टिक स्कूल—जहाँ व्यायाम, खेल, सैनिक कुशलता सिखाई जाती थी। लड़कियों की शिक्षा घर पर ही होती थी। सभी स्कूल प्राइवेट होते थे।

जीवन-परिचय

जिस समय यूनान में स्पार्टा और एथेन्स प्रणाली की शिक्षा चल रही थी उसी समय एथेन्स में ईसा के ४६९ वर्ष पूर्व सुकरात का जन्म हुआ। सुकरात के पिता गरीब थे। मूर्ति-निर्माण का कार्य करते थे। माता दाई का काम करती थी। थोड़े समय तक तो सुकरात ने मूर्ति निर्माण का कार्य किया; शिक्षा दीक्षा का विशेष प्रबन्ध नहीं हो पाया; संगीत और नृत्य की शिक्षा पाना भी कठिन था; किन्तु प्रारम्भ से ही वे एक चैतन्य नागरिक थे। कर्त्तव्य निष्ठा उनमें कूट-कूट कर भरी थी। युवाकाल में अन्य लोगों की भाँति उन्होंने भी सैनिक सेवा प्रारम्भ किया। दो युद्धों में भाग भी लिया और अपनी साहसिक प्रवृत्ति का परिचय दिया। एक समय ये एथेन्स की कौंसिल के सदस्य भी थे। इस समय इन्होंने अपने दृढ़ चरित्र का परिचय दिया। एक बार इनसे कहा गया कि एक व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया जाना चाहिए जिसको इन्होंने निर्दोष समझा था। सब के एक मत होने पर भी इन्होंने वह कार्य न किया और न्याय के पक्ष को दृढ़ किया। इस पर इन्हें कौंसिलरों के सक्रिय विरोध का सामना करना पड़ा किन्तु फिर भी ये अटल रहे। मृत्यु से इन्हें डर न था। मस्ती और स्पष्टवादिता के लिए ये प्रसिद्ध थे।

इनके जीवन क्रम से सभी को ऐसा लगता है कि यह व्यक्ति एकाकी रहा होगा। किन्तु ऐसी बात न थी। इन्होंने विवाह किए थे। पहिली स्त्री से दो बालक और दूसरी से एक बालक उत्पन्न हुआ था। गरीबी और मस्ती के जीवन ने इनका पारिवारिक वातावरण दुःखद बना दिया था। फटे चीथड़े कपड़े, सिर और पैर नंगे एक लाठी का सहारा—यही इनके जीवन का बाना था। न पैसे का लोभ और न यश का लालच। सैनिक जीवन में ही इन्हें जीवन से घोर निराशा हो चली थी। एक बार बीमार पड़े—स्वस्थ हुए तो दार्शनिक बन बैठे। “संसार क्या है? सत्य क्या है, जीवन का उद्देश्य क्या है, न्याय का क्या अर्थ, मृत्यु का क्या आशय, हम कौन हैं, क्यों और कैसे जीवन बिता रहे हैं आदि प्रश्न ही इनके जीवन की समस्या बन गए। ये मानसिक उलझनें दिनों दिन बढ़ती गईं। उस समय के प्रचलित अन्ध विश्वास, सामाजिक प्रथाएँ और मान्यताएँ उन्हें सन्तुष्ट न कर सकीं। तत्कालीन देवताओं की श्रद्धा भी उनके विवेक को न मना सकी। सामाजिक बन्धन उनको भयभीत न कर सके। बस क्या था निर्भीकता की लाठी पकड़ घुमकड़ बन गए। राह चलते लोगों को रोक-रोक कर लगे पूछने—“तुम जानते हो तुम क्या हो? सत्य क्या है? सुख क्या है, न्याय का पथ

(१५३)

जानते हो, जीवन का तात्पर्य क्या, आदि प्रश्नों की झड़ी बाँध देते। लोग हैरान हो सोचने लगते—वात भी क्या है ? प्रश्नों की सच्चाई और यथार्थता में सुकरात ने जहाँ देखो वहाँ ही हजारों लोगों को विचार और चिन्तन के सागर में डुबा दिया। अपनी प्रश्नोत्तर प्रणाली से हजारों लोगों के मन में तूफान खड़े कर दिए। सुकरात की बातें लोगों को भली लगने लगीं। जहाँ देखो वहीं लोग उन्हें खड़ा करके जमा हो जाते और उनके प्रश्नोत्तरों में आनन्द लेने लगते। सुकरात को अकेले पाना कठिन था। जहाँ कोई भीड़ देखते लोग समझ जाते—दार्शनिक का तत्त्व चिन्तन हो रहा है। भीड़ बढ़ती जाती और लोगों का रास्ता चलना बन्द हो जाता। एथेन्स के बाजार में सन्नाटा और सुकरात की तत्त्व-चिन्ता की दूकान में भीड़। दिनों दिन सुकरात के पीछे लोगों की भीड़ बढ़ती गई। एक विचित्र समा दिखाई पड़ने लगे। पंडित और मूर्ख सभी सुकरात की वाणी से आकर्षित थे। इसी प्रकार जीवन के सही रास्ते की खोज में सुकरात ने अपने अन्वेषिकी जीवन के ३० वर्ष बिता दिए। यूनान में इस समय नैतिक पतन हो रहा था। धर्माधिकारी विलासी हो चले थे। राजनीतिक स्वार्थ बढ़ गए थे। रूढ़ियाँ धर्म बन गई थीं। राजतंत्र पड़्यंत्र के केन्द्र थे। ऐसे क्षुब्ध वातावरण में सुकरात की खरी-खरी बातें लोगों को रुचती गईं।

यूनान के निरंकुश शासक सुकरात की स्वतंत्रवाणी सह न सके। उन पर दो अपराध लगाए:—(१) देश के मान्य देवी देवताओं के विरुद्ध प्रचार (२) देश के नवयुवकों को तर्क सिखाकर बरगलाना।

सुकरात ७० वर्ष का जर्जर व्यक्ति अब भी निश्चिन्त था। लिशियास (जो एथेन्स का सबसे बड़ा वॉक्पटु वकील था) ने सुकरात के पक्ष में भाषण तैयार किया। सुकरात ने उसे पढ़ा, विनम्रता से धन्यवाद दिया और कहा “तत्त्व स्वयंमेव अपनी रक्षा करता है। दार्शनिक को आत्म दृढ़ता में विश्वास करना चाहिए।” भाषण का प्रयोग न हुआ।

सुकरात ने अपराधों के सिलसिले में कोर्ट में कहा “अगर आप यह कहते हैं, मैं अपना रास्ता छोड़ दूँ—तो मैं कहूँगा—बन्धवाद। क्या आप को लज्जा नहीं आती है कि सम्पत्ति और झूठे सम्मान के लोभ से आप सत्य और ज्ञान की अवहेलना करते हैं और आत्मा को गिराते हैं। मैं सचमुच नहीं समझता कि मृत्यु क्या है। हो सकता है वह अच्छी वस्तु हो। मैं उससे डरता नहीं। लेकिन मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि जो कल्याणकर है उस रास्ते से विचलित होना बहुत बुरा होगा। एथेन्स जीवित रह सके, सत्य और ज्ञान का मार्ग खुला रह सके—इसके लिए मैं मृत्यु का सहर्ष स्वागत करता हूँ।” एथेन्स के रिवाज के अनुसार अपराधों का दण्ड सुनाया गया “विषपान द्वारा प्राण दण्ड”। सुकरात ने हँसते हुए कहा “कौन जानता है मृत्यु और जीवन में कौन श्रेष्ठ है ?” सुकरात, संसार का एक महान् आश्चर्य—विदा हो गया।

दैन ?

यूरोप में सुकरात 'नैतिकता' के संस्थापक माने जाते हैं। उन्हीं का वहाँ पर सबसे पहिले यह नारा लगा कि "आपने आपको पहिचानो।" यही ज्ञान जानने योग्य है। यद्यपि उन्होंने कोई स्कूल नहीं चलाया किन्तु शिक्षा में उनकी एक महत्वपूर्ण देन है। सुकरात ने अपनी समस्याओं को प्रश्नों के रूप में रक्खा। एक प्रश्न के पश्चात् उत्तर आया और उस पर पुनः प्रश्न रक्खा। इस प्रकार समस्या का निर्धारण प्रश्नोत्तर प्रणाली पर आधारित किया। यह प्रश्नोत्तर प्रणाली तर्क पर आधारित थी अतएव यह सोचने की एक पद्धति बन गई। आगे चल कर शिक्षा में यही प्रश्नोत्तर पद्धति महत्वपूर्ण मानी जाने लगी।

प्रश्नोत्तर पद्धति के अतिरिक्त सुकरात की चिन्तन प्रणाली ने प्रत्येक वस्तु में खोज की प्रवृत्ति पैदा की। अनुभव द्वारा खोज किया हुआ अर्जित ज्ञान ही लाभदायक होता है इस दृष्टिकोण का प्रचार बड़ी तीव्रता से चल पड़ा। सुकरात की चिन्तन प्रणाली द्वारा शिक्षा को जो महत्वपूर्ण दिशाएँ प्राप्त हुई वे निम्नांकित हैं:—

(१) जीवन में नैतिकता के सिद्धान्त को उन्होंने स्वीकार किया और उच्च नैतिक जीवन व्यतीत करना शिक्षा का उद्देश्य बतलाया।

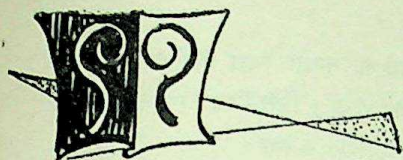
(२) "अपने आप को समझो" इस ज्ञान की आवश्यकता को स्थिर करते हुए उन्होंने तर्क प्रणाली को जन्म दिया। अनुभव के आधार पर मनन द्वारा विश्लेषण करके जो ज्ञान अर्जित किया जाता है वही सच्चा ज्ञान है। अर्जित ज्ञान की वास्तविक समझ उत्पन्न होनी चाहिए, केवल किसी ज्ञान को रट लेना अर्थहीन होता है।

(३) किसी भी ज्ञान को अर्जित करने की जो विधि सुकरात ने अपनाई वह (Dialectic) "तार्किक विधि" के नाम से प्रचलित है। चतुराई के साथ प्रश्नों द्वारा उत्तर निकालना और उनके अर्थ हृदयांगम करना ही ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो सकता है।

(४) प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा सुकरात ने वाद विवाद की प्रथा प्रचलित की जो आगे चलकर विशेष प्रशस्त हुई।

सुकरात के चिन्तन ने शिक्षा के भावी पथ को विशेष धनी बनाया और हम स्पष्ट देखते हैं कि इसका प्रभाव आने वाले शिक्षा सम्बन्धी आन्दोलनों और प्रवृत्तियों पर विशेष रूप से पड़ा।

—:०:—



समवाय क्यों और कैसे?

त्रिलोकीनाथ अग्रवाल

(गतांक से आगे)

समवाय के प्रकार

- १—एक विषय का दूसरे विषय से ।
- २—विषय का सम्बन्ध विषय में ही ।
- ३—विषय का सम्बन्ध सामाजिक जीवन से ।

१—एक विषय का दूसरे विषय से सम्बन्ध :—

इस प्रकार के अनुबन्ध में एक विषय का सम्बन्ध दूसरे विषय से होता है । जैसे—भूगोल का सम्बन्ध अन्य विषयों से । यह सम्बन्ध दो प्रकार का होता है—

- १—प्रासंगिक ।
- २—व्यवस्थित ।

प्रासंगिक :—

समवाय में अध्यापक कोई भी पूर्व योजना दूसरे विषय के सम्बन्धित करने की नहीं बनाता है; परन्तु पढ़ाते समय प्रसंगानुसार पाठ में कक्षा की स्थिति के अनुसार आये हुए प्रसंगों को दूसरे विषयों से सम्बन्धित कर देता है । इस प्रकार का अनुबन्ध नियोजित नहीं होता; बल्कि कक्षा में विद्यार्थियों के द्वारा पूछे गये प्रश्नों से स्थापित हो जाता है । इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की जिज्ञासा की सन्तुष्टि हो जाती है और उनका ध्यान पाठ में केन्द्रित हो जाता है ।

व्यवस्थित :—

इस प्रकार के समवाय में अध्यापक पहले से ही पाठ योजना बनाते समय सम्बन्धित विषय में विचार करता है और इस बात का प्रयत्न करता है कि विषय के इस प्रकरण में कहां पर दूसरे विषय से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । जैसे—भाषा पढ़ाते समय

यदि तेनसिंह की विजय का पाठ है तो अध्यापक भारतवर्ष का नक्शा कक्षा में दिखायेगा और 'माउन्ट एवरेस्ट' की स्थिति का भी ज्ञान विद्यार्थियों को देगा। जिन-जिन स्थानों पर इस दल ने पड़ाव डाले थे उन स्थानों को भी नक्शे के द्वारा प्रदर्शित करेगा।

इसी प्रकार भूगोल में भी दूसरे विषयों से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। जैसे--भूगोल और गणित, अर्थात् भूगोल पढ़ाते समय अक्षांश और देशान्तर का ग्राफ बनाकर बनाना, जनसंख्या या व्यापार दिखाना, दिन और रात का स्पष्टीकरण आदि विषय गणित से सम्बन्धित हैं।

२--विषय का विषयगत प्रकरणों से सम्बन्ध :—

इस प्रकार अनुबन्ध में एक विषय पढ़ाते समय उसी विषय के अन्य प्रकरणों से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। आर्थिक भूगोल का सम्बन्ध जैसे प्रकृति से एवं मानव भूगोल का प्रादेशिक भूगोल से स्थापित करते हैं। इसी प्रकार जब हम किसी भी महाद्वीप, देश या प्रान्त के भूगोल का अध्ययन करते हैं तो उस समय वहाँ की प्राकृतिक स्थिति का मानव जीवन से क्या सम्बन्ध है ? इस पर विचार करते हैं।

किसी भी प्रान्त या देश में जो भी मानव की क्रियाएँ होती हैं, उनका समन्वय प्राकृतिक स्थिति पर निर्भर होता है। जैसे—बंगाल में अधिक चावल क्यों उत्पन्न होता है, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गेहूँ अधिक क्यों खाया जाता है, उत्तर प्रदेश में नहरें दक्षिणी भारत की अपेक्षा अधिक क्यों हैं ? इसी प्रकार भूगोल पढ़ाते समय एक प्रकरण का सम्बन्ध दूसरे प्रकरण से स्थापित किया जाता है। अन्य विषयों में भी विषयगत सम्बन्ध होता है। जैसे—गणित में रेखागणित और बीजगणित का आपस में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

३—सामाजिक जीवन से सम्बन्ध :—

आधुनिक युग में जो शिक्षा विद्यार्थी को दी जाती है या जो शिक्षा विद्यालय में प्राप्त की जाती है वह सैद्धान्तिक होती है; क्योंकि पुस्तकों का ज्ञान अधूरा है, जब तक वह व्यावहारिक रूप से अनुभव न किया जाय। जैसे—बच्चों को कक्षा में पढ़ाया जाता है कि सफाई से रहना चाहिए, बड़ों का आदर करना चाहिए परन्तु आज का विद्यार्थी इन नागरिक शास्त्र के सिद्धान्तों को जानता है परन्तु जहाँ तक उस ज्ञान के उपयोग का प्रश्न है उसके विषय में न कहा जाय तो अति उत्तम है। स्कूल के विषयों का सम्बन्ध जीवन से होना चाहिए। यही कारण है कि जब विद्यार्थी विद्यालयों में पढ़ते हैं तो उनको समाज के विषय में कोई ज्ञान नहीं होता है। अगर विद्यार्थियों को वास्तविक समस्याओं से परिचित कराकर ज्ञान दिया जाय तो उनमें अनुशासनहीनता नहीं आ सकेगी और वे अपने उत्तरदायित्व को भलीभाँति समझ सकेंगे।

(१५७)

मेरा अनुभव है कि जब स्काउटिंग में विद्यार्थियों की मेलों, प्रदर्शनियों या अन्य किसी सामाजिक कार्यों में नियुक्ति कर दी जाती है तो वे नागरिक शास्त्र के सब नियमों का पूर्ण रूप से पालन करते हैं। विद्यार्थी को जब उत्तरदायित्व मिल जाता है तो वह उसका पूर्ण रूप से निर्वाह करता है। इसी प्रकार समय का ज्ञान विद्यार्थियों को स्कूल के सब नियमित समय पर होने वाले कार्यों से दिया जा सकता है। हम विज्ञान पढ़ाते समय विद्यार्थियों के जीवन में उपयोग होने वाली वैज्ञानिक वस्तुओं का ज्ञान दे सकते हैं और प्रत्येक विद्यार्थी विज्ञान को बड़ी ही सरलता से समझ लेगा। जैसे--साइकिल में पम्प से हवा भरना, साइफन धार और अम्लों का जीवन में प्रयोग।

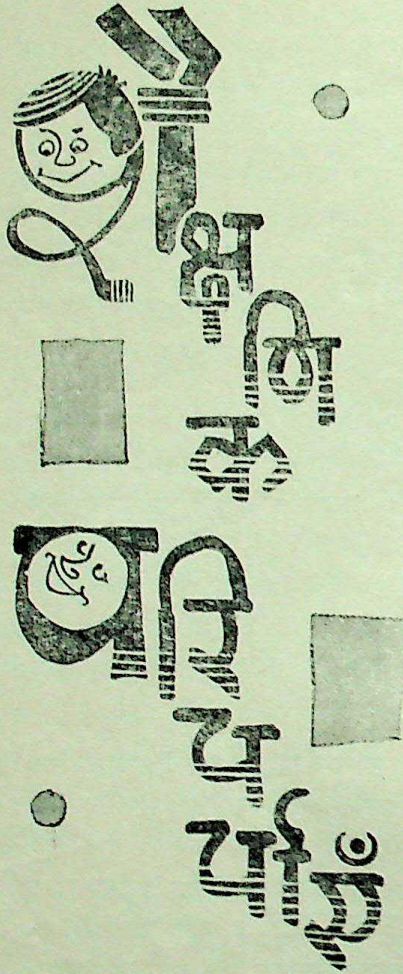
मुझे कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है, जब विज्ञान पढ़ाते समय हम अपने प्रयोग केवल बीकर या अन्य वैज्ञानिक साधनों तक ही सीमित करते हैं। उन प्रयोगों को हम वास्तविक वस्तुओं के द्वारा, जिनका हम जीवन में प्रतिदिन उपयोग करते हैं, प्रयोग करके दिखा सकते हैं। इसी प्रकार से कक्षाओं में विद्यार्थी व्यवहार गणित के प्रश्न हल करते हैं; परन्तु उन्होंने यह कभी अनुभव नहीं किया होगा कि हमारे अशिक्षित भाई भी व्यवहार गणित का प्रतिदिन उपयोग करते हैं। जैसे--एक मजदूर जब हिसाब लगाता है तो वह व्यवहार गणित के तरीके से ही; यद्यपि वह नहीं जानता कि इस प्रकार से प्रश्न हल करने की क्रिया को व्यवहार गणित कहते हैं।

इसी प्रकार ऐकिक नियम के प्रश्न भी कक्षा में कराये जाते हैं; परन्तु विद्यार्थी अपने व्यावहारिक जीवन में ऐकिक नियम का प्रयोग नहीं कर पाते। जैसे--कमीज का एक कपड़ा रुपये चौदह आने गज आता है तो बारह गिरह का दाम एम० ए० पास विद्यार्थी भी उतनी योग्यता से नहीं बता सकता जितना कि कम पढ़ा-लिखा दुकानदार। इसी प्रकार नये पैसे के हिसाब में आज का विद्यार्थी कोई भी रुचि नहीं लेता और न वह समझने की कोशिश करता है। यही कारण है कि पोस्ट आफिस, बस स्टैंड पर अधिक पैसे विद्यार्थी दे आते हैं। अगर विद्यार्थी की पढ़ाई का जीवन से वास्तविक सम्बन्ध हो तो वे स्वयं ही अपने जीवन में सावधानी से कार्य करने लगेंगे।

बुनियादी शिक्षा उद्योग, सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण के माध्यम से दी जाती है। इसमें विषयों को महत्व न देकर उद्योग तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान को महत्व प्रदान किया जाता है। उद्योग और ज्ञान के आधार पर ही भूगोल, गणित, इतिहास का ज्ञान कराया जाता है। विद्यार्थी वास्तविक रूप से भौगोलिक ज्ञान का उपयोग समझ लेता है। इस शिक्षा-प्रणाली में विषय को महत्व न देकर कर्म और ज्ञान का समन्वय किया गया है।

सेवापुरी में नयी तालीम गोष्ठी

कृष्णकुमार



सेवापुरी में उत्तर प्रदेशीय नयी तालीम परिसंवाद गत २२ और २३ दिसम्बर को हुआ। इसमें भाग लेनेवाले प्रमुख लोग थे—श्री धीरेन्द्र मजूमदार, श्री केशभान राय: उप शिक्षा मंत्री उत्तर प्रदेश; श्री अक्षय कुमार करण, श्री राधाकृष्ण मन्त्री, अ० भा० सर्व सेवा संध, आचार्य राममूर्ति, श्रीमती सुभद्रा तैलंग प्रिंसिपल, फाउण्डेशन फॉर न्यू एडुकेशन, फार विमेन, राजघाट, काशी, श्रीमती सरला बहन्, लक्ष्मी आश्रम, कौसानी, प्रो० आसराणी आदि। इनके अलावा उत्तर-प्रदेश गांधी स्मारक निधि के कार्यकर्ता तथा शिक्षा में काम करनेवाले सरकारी और गैर सरकारी लोग भी थे।

श्री करण भाई ने आए हुए अतिथियों का आश्रम-परिवार और नयी तालीम-परिवार की ओर से स्वागत किया। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि हमारे समाज की सभी समस्याओं का समाधान शिक्षा के अन्दर से निकलना चाहिए और बुनियादी तालीम के अन्दर से उसका हल तो निकलना ही चाहिए। आगे उन्होंने शिक्षा

की दो प्रमुख समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया? देश के लाखों-करोड़ों लोगों को तालीम कैसे दी जाय? उत्तर-प्रदेश में बुनियादी तालीम का स्वरूप कैसे निखरे?

श्री करण भाई के बाद उत्तर-प्रदेश के उप शिक्षा मंत्री श्री केशभान राय ने बुनियादी तालीम की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि अगर बुनियादी तालीम असफल होती है तो वह पूरे मानवमात्र की असफलता मानी जायगी। बुनियादी तालीम ही एक मात्र वह मार्ग है, जिससे मानवता की रक्षा हो सकती है। नयी तालीम का विचार गांधी का विचार है। गांधी व्यक्ति नहीं थे, वे युग थे। उनके इस विचार में पूरी मानवता छिपी हुई है; इसलिए मानवता की रक्षा करने के लिए बुनियादी तालीम की अत्यन्त उपयोगिता है।

श्री धीरेन्द्र भाई ने कहा कि नयी तालीम पर विचार करते समय दो घटनाओं को ध्यान में रखना चाहिए। १९४७ में भारत आजाद हो गया और २६ जनवरी ५० को बालिग मताधिकार का एलान किया गया। आजादी के बाद और मताधिकार के एलान के साथ ही शिक्षा का स्वरूप बदल गया। इस एलान के साथ ही यह स्पष्ट हो गया कि कोई भी राजा हो सकता है; इसलिए हर आदमी को बालिग होने तक इतनी शिक्षा तो मिलनी ही चाहिए, ताकि वह मेनिफेस्टो को समझ सके। लोकतन्त्र की इस चुनौती को ध्यान में रखकर करोड़ों लोगों को शिक्षा देने की बात सोचनी चाहिए।

प्रस्ताव नं० १

श्री करण भाई ने एक प्रस्ताव पेश किया जो परिसम्वाद का आधार बना और जिसे 'शिक्षा के सघन क्षेत्र' नामक संज्ञा से सम्बोधित किया गया। प्रत्येक व्यक्ति तक शिक्षा कैसे पहुँचे, इस विचार की पोषक यह योजना निश्चय ही सफल हो सकती है, अगर इसमें पूरी शक्ति लगायी जाय। श्री करण भाई ने इस प्रस्ताव पर चर्चा करते हुए कहा कि यह प्रस्ताव गाँव के असंख्य लोगों को शिक्षित करने का है। 'शिक्षित' से मतलब पढ़ा-लिखा देना भर नहीं है। उत्पादन बढ़ाने का काम शिक्षण को अपने हाथ में लेना चाहिए।

श्रीमती सरला बहन ने प्रस्ताव पर चर्चा करते हुए कहा कि सघन क्षेत्र का काम अच्छा है; परन्तु इस काम में समय लगाने की जरूरत है। इसके लिए जीवन समर्पण करना चाहिए। आगे आपने कहा कि हम बालकों के जीवन में जो तत्व देखना चाहते हैं वह हमारे अन्दर भी आना चाहिए। गुजरात की नयी तालीम की सराहना करते हुए उन्होंने कहा कि हम उन लोगों की तरह उत्तर प्रदेश में भी काम कर सकते हैं।

श्री राधाकृष्ण जी ने तीन बातों पर ध्यान दिलाया। उन्होंने कहा कि लोकतंत्र की परम्परा को स्कूलों में दाखिल करना चाहिए। बच्चों में शुरू से ही लोकतंत्र की भावना पैदा होनी चाहिए। दूसरे तत्व के रूप में स्कूलों में उत्पादन को दाखिल करना होगा। राइफल ट्रेनिंग का वातावरण है। अगर उत्पादन की ओर ध्यान नहीं गया तो पूरा देश फासिज्म की ओर जायेगा। स्कूलों में तीसरा काम शांति का हो सकता है। शालाएँ अपने क्षेत्र में शांति-रक्षा की जिम्मेदारी ले लें। अब तक शिक्षण ने नेशनल आर्ग्युमेण्ट को ध्यान में रखकर काम नहीं किया है, लेकिन अब उसका ध्यान रखना आवश्यक है।

दूसरे दिन श्री राममूर्ति जी ने सेवा भारती का प्रस्ताव रखा और वह सहर्ष स्वीकार किया गया। प्रस्ताव पेश करते हुए आपने कहा—एक-एक गाँव को विश्वविद्यालय बनाने की कल्पना आज शिक्षा जगत में आ गयी है। वह कब चरितार्थ होगी, यह कहा नहीं जा सकता; लेकिन हमारा संगठित पुरुषार्थ उस दिशा में जाना चाहिए, यह निश्चित है। लेकिन ग्राम-विश्वविद्यालय के बनने के पहले कोई ग्रामीण-विश्वविद्यालय बनना चाहिए। ऐसा कोई शिक्षण

और शोध का स्थान बने जहाँ शिशु से लेकर प्रौढ़ तक की शिक्षा हो और यह मालूम हो कि किस तरह शिक्षण जीवन के करीब आ रहा है, जीवन के लिए हो रहा है। इस लिए यह महसूस हुआ कि सेवापुरी की संस्था को यह जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी चाहिए।

प्रस्ताव—२

प्रस्ताव पेश करने के बाद उन्होंने कहा—“बुनियादी शिक्षा को यह बात तय करनी है कि सेवा-भारती के तत्वावधान में, हम समाज में किस तरह अर्थनीति चलाएंगे, समाज के लिए किस तरह की शिक्षा नीति ठीक होगी, किस तरह की समाज-नीति ठीक होगी और यह भी कहा जा सकता है कि किस तरह की राजनीति और किस तरह की धर्म-नीति ठीक होगी।

सेवाभारती की सबसे बड़ी जिम्मेदारी पर ध्यान दिलाते हुए आचार्यजी ने कहा कि हम एक दूसरे का सिर तोड़ कर क्रांति नहीं करना चाहते, हम सरकार के कानून के बल पर क्रांति नहीं चाहते, हम अपने पुरोहित के आशीर्वाद पर क्रांति नहीं चाहते और हम पुलिस के डण्डे से समाज को बदलने में आस्था नहीं रखते, अब अगर हमारी पुरानी आस्थाएँ हिल गयी हैं और बेकार साबित हुयी हैं तो बुनियादी शिक्षा आज के जमाने की हमारी आस्था है, हमारा उसमें विश्वास है और हम उस पद्धति से जीवन-परिवर्तन और समाज-परिवर्तन की बात सोचते हैं और कहते हैं तो इन सब विचारों को आधार मान कर प्रयोग शुरू करना और उस प्रयोग को समाज के साथ जोड़ना और समाज की भूमिका में बुनियादी शिक्षा की सार्थकता को सिद्ध करना है। यह सब जिम्मेदारियाँ सहज ही सेवाभारती पर आती हैं।

श्रीमती सुभद्रा तैलंग ने 'सेवाभारती' प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि समाज-परिवर्तन के लिए समाज को नया मोड़ देने के लिए और क्रांति लाने के लिए यह सेवा-भारती का पराक्रम सिद्ध होगा। आज के प्रतिकूल वातावरण में सेवाभारती जो काम करने जा रही है उससे उदार भावना और उच्च चरित्र के बालक और बालिका तैयार होंगे।

सेवाभारती प्रस्ताव पर अन्य सदस्यों ने दिलचस्पी के साथ चर्चा की और इस प्रस्ताव का स्वागत किया।

अन्त में श्री धीरेन भाई ने विस्तार से चर्चा करते हुए कहा कि लोकतंत्र और विज्ञान, मानव-समाज के सामने दोनों चीजें चुनौती बनकर खड़ी हुई हैं और मानव-समाज विज्ञान और लोकतंत्र की चुनौती बन गया है। मानव का खतरा विज्ञान और लोकतंत्र पर है और विज्ञान तथा लोकतंत्र का खतरा मानव पर है। इस खतरे से बचने और बचाने के लिए शिक्षा को सोचना होगा। इसके लिए अच्छी प्रक्रिया की खोज करनी होगी। शिक्षा में काम करनेवालों के लिए यह चिन्तन का विषय है। समस्त मानव की शिक्षा की व्यवस्था कैसे की जाय इसकी प्रक्रिया की खोज करनी होगी।